सूरज नया निकलने दो!

(हिन्दी ग़ज़लें)

भानुमित्र

लेखक एवं प्रकाशक :	:	भानुमित्र ओंकार भवन, पीपली महादेव की पोल मे, माणक चौक, जोधपुर-342 002
		दूरभाष : 0291-612494
संस्करण :		प्रथम - 1999
मूल्य :		उपहार स्वरूप
आवरण :		गोल्डन आइज़, जोधपुर
रूपसज्जा :		बी. एल. वी. कम्प्यूटर्स, जोधपुर
मुद्रक :		भण्डारी ऑफसेट, जोधपुर

SOORAJ NAYAA NIKALANE DO (Hindi Gazals) by BHANUMITRA

गुरू

जनाब शीन. काफ़. निज़ाम

एवम्

साहित्य-प्रवेश-द्वार

श्री सत्येन जोशी

को सादर समर्पित

लेखक की ओर से ....

ग़ज़ल उर्दू काव्य-भाषा की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है, जिस का प्रादुर्भाव शाहजहाँ-काल में पंडित चन्द्रभान 'बिरहमन' की लेखनी से हुआ, माना जाता है । ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उर्दू-शाइर जनाव शीन. काफ़. निज़ाम 'ग़ज़ल: एक यात्रा' में अपने विवेचन में बताते हैं ——

"जब ख़ूंख़ार जंगली कुत्ते हिरन का पीछा करते हैं और हिरन की जान पर बन जाती है तो वह मुक़ाबले के लिये तैयार हो जाता है, उस समय वह ऐसी दर्दनाक आवाज़ पैदा करता है जिस में यह तत्त्व भी मौजूद होता है कि मैं जान पर तो खेल गया हूँ लेकिन दुश्मन को भी नुकसान पहुँचाऊँगा, तो गोया उस दर्दनाक आवाज़ के साथ ख़ुशी की कैफ़ियत भी मिल जाती है । इसी आवाज को ग़ज़ल अल्क़ाब कहते हैं और इसी वजह से हिरन ग़ज़ल कहलाता है ।" ('नई ग़ज़ल से')

ऐसा आर्त-स्वर, जब सरिता तट पर क्रीड़ा-रत क्रौंच-जोड़े के नर-क्रौंच को निषाद द्वारा तीर चलाकर आहत किया गया था और तब मादा क्रौंच के हृदय से निषाद को श्राप एवम् वेदना का जो मिश्रित आर्त-स्वर उठा था, हज़ारों पूर्व महर्षि वाल्मीकि ने उस लय को पहचान लिया था, जिस के आधार पर 'रामायण' महाकाव्य की रचना हुयी थी ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पहले में जहाँ आघात व्यक्ति स्वयं भीतर भोगता है एवं भोगने की पीड़ा को शब्द-स्वरिका में अभिव्यक्ति प्रदान करता है, वहीं दूसरा अन्य हृदय में उत्पन्न हुए आघात की पीड़ा को ग्रहण करता है, उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है । यहाँ स्वयं तथा अन्य का यद्यपि एक अद्भुत तादात्मय है । फिर भी पहले में वास्तविक अनुभूतियों का स्फूरण निकलता है, उसी का सृजन होता है जो अनुभव हुआ है । दोनों के साक्षात्कार में यही सूक्ष्म भिन्नता है, यद्यपि दोनों अनुपम एवं महान हैं ।

शब्द कोष में 'ग़ज़ल' शब्द का अर्थ 'प्रेमिका से वार्तालाप' बताया है जो उचित प्रतीत नहीं होता । प्रेमिका के प्रेम दर्शन में आर्त्त स्वर नहीं होता अपितु हर्ष होता है तथा वियोगावस्था में पुनर्मिलन की आकांक्षा व तड़प होती है । हर्ष-दर्शन में न आघात, न पीड़ और न टीस होती है, मात्र प्रेमिका को पाने का परोक्ष/अपरोक्ष लक्ष्य होता है । अब, जब कोई कवियित्री 'ग़ज़ल' कहती है तब उसे क्या कहियेगा ? 'ग़ज़ल' की अभिव्यक्ति पर पुरुषों का एकाधिकार तो है

नहीं । और अब तो ग़ज़ल प्रेम तथा विरह की सीमा को तोड़ कर क्षितिज की ओर बढ़ती जा रही है । मनुष्य जीवन पर पड़ने वाले किसी भी प्रकार के प्रभाव को शे'र कह कर उजागर किया जाने लगा है । यहाँ तक की प्रकृति, पशु, पक्षी एवं वनस्पति के प्रति लगाव और उस को पहुँचने वाले आघात के प्रति संवेदनशील शे'र कहे जाने लगे हैं । प्रेम तथा विरह तो गौण विषय रह गये हैं ।

'ग़ज़ल' शब्द की व्युत्पत्ति 'ग़ज़ाल' शब्द से हुई होगी, इस में असहमति तो नहीं, परन्तु संभावनाएं कभी समाप्त नहीं होती । 'ग़ज़ाल' शब्द की भांति एक और शब्द है 'ग़ज्ज़' - जिस का शाब्दिक अर्थ है — घाव में पीप पड़ना एवं उसका घाव से बहना । घाव, पीप तथा बहना अर्थात आघात, पीड़ और टीस । ग़ज़ल कहने वाले के हृदय में पहले आघात (घाव) लगता है जिस से पीड़ या पीड़ा (पीप) अनुभव होती है जो शनैः शनैः टीस (बहना) के रूप में बाहर निकलती है । यह आघात बाहरी अथवा भीतरी, कुछ भी हो सकता है, जिस में व्यथा की पीप पड़ती हैऔर टीस में परिवर्तित होती जा कर बाहर निकलने को व्यग्र होती है । अन्ततः शब्दों के रूप में बाहर निकल कर अन्य तक पहुँचती है । इसी टीस को जब कोई दूसरा अनुभव (सम्प्रेषण के माध्यम से) करता है तब दृष्टा (श्रोता या पाठक) के हृदय में वैसी ही टीस पैदा करती औरपीड़ा में परिवर्तित होकर वैसा ही आघात पहुँचाती है । तब श्रोता या पाठक अचानक ही जागृह होकर इस आघात को पहचानने का यत्न करता है जो सृजक को लगा था । उस आघात को पहचानते ही वह आर्त-आर्त हो जाता है और बोल पड़ता है — यह आघात तो उसी के हृदय का है, सृजक तक कैसे पहुँच गया । 'ग़ज़ल' का एक एक शब्द ज्यों-ज्यों सम्प्रेषित होता है, श्रोता या पाठक का हृदय भी द्रवित होता जाता है, पानी की लहरों की भांति जो निरन्तर गतिमय है - न पानी में गहरे और न पानी से अलग हो कर आकाश को छूती हुयी - बस, तट में (श्रोता या पाठक) समाहती हुयी । यह लहर झील, तालाब, नदी, सागर, किसी की जल निधि से उठी हुयी हो सकती है, किसी भी जल बिन्दु से बनती-फैलती तट की ओर अग्रसर होती है।

यह लहर तट से लौटती सी अपने पीछे आती हुयी दूसरी लहर में समाहने की समर्पित भावना से ओत-प्रोत गत्यमान रहती है । यह दूसरी लहर यद्यपि दृष्टा के लिये पूर्व दृश्य ही सा प्रदान करती है, परन्तु उस में एक अलग परिदृश्य होता है जिसे नया कहा जा सकता है पर नया होता नहीं । इस प्रकार 'ग़ज़ल' का यह तृतीय सम्प्रेषण लहर का लहर में समाते हुए नयी लहर का सृजन करते चले जाना है ।

अतः 'ग़ज़ल' की गति लहर की गति सी है या लहर की गति ग़ज़ल की लय है । जिस प्रकार लहर का अस्तित्त्व उस की एक एक बूंद के जुड़ाव से है,उसी प्रकार 'ग़ज़ल का अस्तित्व भी इस के एक-एक शब्द के सह-सम्बन्ध से है जो छन्द के भीतर अपने अपने स्थान पर खम्भे की भाँति अविचल है,इसी लिए 'ग़ज़ल' को शब्द-प्रधान काव्य विधा कहा गया है । इस का यह तात्पर्य भी नहीं कि अन्य काव्य विधाएँ शब्द प्रधान नहीं,अवश्य हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि 'ग़ज़ल' के शे'र में शब्द पलटना तो दूर,आगे या पीछे करने मात्र से शे'र का भाव बदल जायेगा ।

'ग़ज़ल' के हर शे'र से अनेक किरणें निकलती हैं और श्रोता या पाठक अपनी समझ के स्तर पर भिन्न भिन्न रूप से ऊष्मा ग्रहण करता है तथा अपने अनुभव के आधार पर प्रकाशमान होता है, आनन्दित होता है, 'ग़ज़ल' कहना स्वर्ण का कुन्दन में परिवर्तित होने के समान है । सृजक में यदि स्वर्ण मात्रा नहीं है तो अग्नि में तपते तपते स्वयं ही समाप्त हो जाता है परन्तु कुछ भी मात्रा होने पर वह अन्ततः कुन्दन बन ही जाता है । 'ग़ज़ल' भी तपने की महायात्रा है, इसी लिये,जिस प्रकार दोहे अन्य भाषाओं में कहे जाने लगे,सौनेट या हाइकू भी अन्य भाषाओं में प्रकाशमान होने लगे । आज 'ग़ज़ल' उर्दू में ही नहीं कही जाती बल्कि भारत की अन्य भाषाओं में कही जाने लगी है । यही उस में महत्व की पहचान है ।

'ग़ज़ल' के महत्व को उजागर करने का यह अर्थ नहीं कि अन्य काव्य विधाएँ गौण हैं । हाँ,'ग़ज़ल' काव्य-रचना एक ठोस भूमि का रूप लिये होती है,जिसे हिलाया नहीं जा सकता। 'ग़ज़ल' का हर शे'र अभिव्यक्ति की सम्पूर्णता लिये होता है । सम्पूर्ण ग़ज़ल का हर शे'र एक दूसरे से अलग होते हुए भी अपना आन्तरिक सम्बन्ध बनाये रखता है, जीवन्त रहता है। हर शेर की सम्प्रेषणीयता की लहर गृहीता के अन्तस में सीधा प्रभाव डालती है । एक अच्छा शे'र श्रोता को उसे गुनगुनाते हुए रखने की प्रवृत्ति पैदा करती है वहीं अन्य काव्य विधा उस के भीतर से निकलने वाली मूल भावना उपसंहार की भाँति प्रभाव छोड़ती है ।

भारत में 'ग़जल' उर्दू के बाद हिन्दी में सब से अधिक कही जाने लगी है,पर अपने आप में बहुत कम । अतः यह अभी भी भ्रूणावस्था में है । भ्रूण इस लिये कि हिन्दी 'ग़ज़लें' या तो बहुत कम लिखी गयीं या मात्र उत्कण्ठा के स्तर पर मंच से कहने की प्रवृति रही । इसी पृष्ठ भूमि में १९८१ में जब मैंने हिन्दी 'ग़ज़ल' कहनी प्रारम्भ की तो लगा उस में कहीं भी हिन्दीपन नहीं झलकता । इस का कारण था,'ग़ज़ल' के बारे में जानने हेतु उर्दू माध्यम सीखना अनिवार्य

था, अतः उर्दू ग़ज़ल का प्रभाव होना ही था । मैं निराश हो गया और उस समय तक कही ग़ज़लों को निरस्त कर फैंक दिया । परन्तु उन्हीं दिनों श्री रमेशचन्द्र शाह द्वारा श्री अज्ञेय से किये गये साक्षात्कार के माध्यम से जब मैंनें यह जाना :

"दीर्घ को लघु पढ़ने का अधिकार हिन्दी-उर्दू दोनों को समान रूप से था । लेकिन उर्दू आज तक उसका फ़ायदा उठाती रही और हिन्दी में यह तो किसी ने नहीं कहा कि ऐसा नहीं होना चाहिये, लेकिन जितने अच्छे कवि थे, छन्द पर अधिकार रखने वाले, उन्होंने यह छोड़ दिया । तो जो छोड़ दिया गया, ऐसा मान लिया गया है कि वह दोष ही है ।" (अपरोक्ष - अज्ञेय से सात संवाद, पृष्ठ - १०१)

तो इसने मुझे पुनः ग़ज़ल कहने के लिए प्रेरित किया, लेकिन यह बात मेरे मस्तिष्क में बराबर बनी रही कि इस में हिन्दीपन बना रहे और संरचना के स्तर पर उर्दू ग़ज़ल की आन्तरिक आवश्यकताओं का निर्वाह होता रहे ।

जैसा पहले कहा गया कि हिन्दी ग़ज़ल अभी अपनी भ्रूणावस्था में है, जिस के बीज जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शमशेरसिंह बहादुर, सूर्य भानु गुप्त, दुष्यन्त कुमार, गोपाल प्रसाद व्यास 'नीरज', अवधनारायण, कृष्ण मोहन आदि ने हिन्दी ग़ज़ल भूमि में बहुत पहले ही डाल दिये थे । बाद में धीरे धीरे हिन्दी भाषी साहित्यकारों ने इसे सींच कर पौधे का रूप दिया, यहाँ तक कि पाकिस्तान के शाइर भी हिन्दी ग़ज़ल कहने लगे हैं ।

अन्त में, उन सभी बन्धुओं का, जिन्होंने प्रकट/अप्रकट रूप से मुझे ग़ज़ल विधा में अपनी पीड़ा कहने हेतु प्रेरित किया, उन के प्रति भी, जिन के हतोत्साहन से मैं उत्साहित होता रहा, अपना आभार प्रकट करता हूँ । उन्हें भी धन्यवाद देना नहीं भूलना चाहता जिन्होंने मेरे व्यक्तिगत जीवन में आघातों का अम्बार खड़ा कर दिया था, जिस के कारण मैं ग़ज़लें कहता रहा, कहता रहा, कहता रहा.....

संघर्षों से जो भयभीत जिया करते हैं
समझौतों का वे ही नाम लिया करते हैं

'भानुमित्र'

ये ग़ज़ल ग्रन्थ मेरी प्रस्तावना है
रंग दें कौन सा, ये देखना है

लोग हैं भयभीत से नेपथ्य में
अब तुझे ही मंच संभालना है

एकत्र कर लीं सभी सूखी पत्तियाँ
अभी इनमें हरी संभावना है

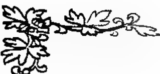
शब्द - शिशु - मन कहीं मुर्झा न जाये
फले - फूले, यही आराधना है

कट गया वृक्ष, इसका है दुख बहुत
पर इक नये वृक्ष की कामना है

धज्जियाँ पश्चात जाने के मत उड़ा
ये स्वयं की कड़ी आलोचना है

इसे सिर पे रक्खें अथवा जला दें
ये ग्रन्थ आप को ही सौंपना है

नये आघात की पीड़ा, नयी टीस
'मित्र' फिर इक नया शे'र कहना है



साम की बयार सुन
मेरा प्रथम प्यार सुन

बादलों की धार सुन
रूप का सिंगार सुन

आस-पास चाँद के / तारिका निखार सुन

धूप और पत्तों की / बात बार बार सुन

आर-पार धार के / दूरियाँ अपार सुन

डाल-डाल वृक्षों में / साँस का प्रसार सुन

घाटियों के बीच तू / खोह की पुकार सुन

तार-हीन साँस को / अन्तरिक्ष पार सुन

जंगलों सी भीड़ में / मात्र अन्धकार सुन

आर्त्तनाद क्रौंच का / घूरता शिकार सुन

पंख फड़फड़ा मगर / साँझ का प्रसार सुन

'भानुमित्र' शेरों में
शब्द का सितार सुन



काल का चक्र बदलने दो
इक नया सूर्य निकलने दो

हो जायेगी नम ये धरती
एक पत्थर पिघलने दो

ये क्षितिज हमारा ही नहीं
बूँद है, इसे उछलने दो

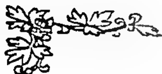
पाँव है इक दिन दौड़ेगा
अभी तो इसे फिसलने दो

पुंज का रूप वो धर लेगी
रात भर बाती जलने दो

अनगिनत घाव लगे उसको
पीठ को कुछ तो सहलने दो

रस्ते ख़ुद ही मिल जायेंगे
पाँवों को मिल के चलने दो

बसेगा 'भानु' प्रेम-नगर
घृणा का जंगल जलने दो



पंथ पंथ तंग देख
खंड खंड अंग देख

कथ कथ अंक ढूँढ
खंभ खंभ भंग देख

मंद मंद कंत संग
लोम लोम नंग देख

धार धार बंद गंध
अंश अंश रंग देख

गोम - साँझ पाँत हेर
पंख पंख संग देख

अत्र - तत्र तर्क छोड़
तत्त्व अन्तरंग देख

हेम ताल झील नीर
'भानुमित्र' गंग देख





पत्तों पर किरनों की चमक
तिड़के तन होती है कसक

कहाँ गयी बस्ती की चहक
बीत गया क्या एक दशक !

सूरज से डरता हूँ बहुत
उस को है बस जल की चसक

देख लिया जब मैंने तुझे
कैसे बंद करूँ ये पलक !

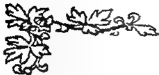
चलता जाऊँ जितना तेज
होती जाये लम्बी सड़क

खुद में अन्तर पाता गया
जल में देखी जब भी झलक

निकले आग लगाने मगर
घर में रखना अग्नि-शामक

'भानुमित्र' सुमन की तरह
जग के हर कोने में महक





शाख़ों से बिछड़े पत्ते
बिखर गये सूखे पत्ते

आँखों में इतने पत्ते
झूठे हैं सारे पत्ते

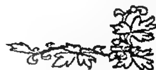
सरसर के जब शब्द सुने
पत्तों से चिपके पत्ते

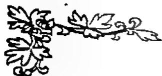
साँसों में भर कर साँसें
अब के सब रोये पत्ते

चमके जायें आँगन में
नन्हे से नन्हे पत्ते

छोटी छोटी बातों पर
घर घर में बिखरे पत्ते

'भानुमित्र' जब भी लौटे
हो के प्रसन्न नाचे पत्ते





पत्ते हैं वो झरते रहेंगे
पेड़ बस देखते रहेंगे

कहाँ तक भटकते रहेंगे
घरों को खोजते रहेंगे

चाह पूरी न होगी कभी
हाँ, स्वप्न चलते रहेंगे

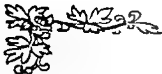
दिन उगेंगे जब भी तुम से
तुम्हीं से वो ढलते रहेंगे

हर कोई खाता है ठोकर
सड़क से सीखते रहेंगे

जब जब भर आयेगी नदी
हम पाल खोलते रहेंगे

'मित्र' अब और कब मिलोगे
चलते हैं मिलते रहेंगे



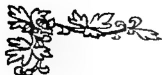


राह देखती है मुझे
कुछ तो कहती है मुझे .

मैं खड़ा दिन के तले / रात ढूंढती है मुझे
कौन था घर में तेरे / आँख पूछती है मुझे
प्यास अपनी मिटाने / ओस माँगती है मुझे
मैं खोया सपनों में / नींद खोजती है मुझे
बदलता है कुछ वरना / क्यों तोड़ती है मुझे
मेरे प्रेम की मदिरा / बहुत तरसती है मुझे
जंगल की हर हवा / दवा बाँटती है मुझे
कल फिर लोगे जनम / मौत बताती है मुझे

मैं ही हूं 'मित्र' उस का
रेत जानती है मुझे





बूँद चली, [redacted] अम्बर को
भूल गया हूँ घर को

काच सा है तन मेरा
क्या कहें पत्थर को

क्या होगा सिर का अब
जीब गयी अन्दर को

किस किस को पार करें
बादल कि समन्दर को

कहाँ सोयेगा मुन्ना
रौंद गया बिस्तर को

'मित्र' मैं तो था अचेत
किस ने काटा पर को





पत्ता पत्ते की बात सुने
हैं उन के भी तो घाव हरे

पत्थर को भी धर लें मन पर
निष्ठुर है कैसे बात बने

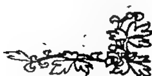
ये सन्देशा उन से कहना
पेड़ों से अब तो पात गिरे

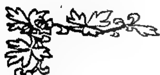
किस छत पर बरसेगा जा कर
फिरता है जल का बोझ लिये

जिन यादों से लगे इक आग
ऐसी यादों को याद करे

आग बुझा कर चला गया जल
फिर आग जलायें पेड़ तले

माँगेगा 'भानु' मौत अगर
फिर भेजेगा जीने के लिये





इधर है न उधर
खो गया है घर
क्या करें, धड़ का / झड़ गया है सर

टूट, ऐ सूरज / इक घरा फिर घर

अँधियारा है / रोशनी तो कर

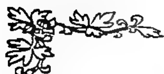
चल खुलेपन में / उमस है भीतर

पढ़ूँगा खुद को / रेत पर लिख कर

प्रीत में तेरे / अगर है न मगर

आप आ तो गये / भाग्य सिकन्दर

सोचता हूँ मैं
'भानु' ज़रा ठहर



सागर से उड़ते हैं बादल
अम्बर में ठहरे हैं बादल

तोड़ लिया लहरों से नाता / पर्वत में फिसले हैं बादल

पानी के भीतर हैं लेकिन / पानी में जलते हैं बादल

धुँधला जाता है ये मुखड़ा / दर्पण में इतने हैं बादल

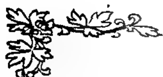
छत से मेरी जब भी निकले / रूखे से होते हैं बादल

लगता है हर पेड़ सिहरने / जब भी टकराते हैं बादल

मीन हुयीं जलहीन बिचारी / कब जम कर बरसे हैं बादल

'भानुमित्र' हम उड़ने वाले
इक घर कब ठहरे हैं बादल





बहते हुए जल को देखूँ
कट जाये पल वो देखूँ

जो देखे न दिखायी दे
सपनों में उस को देखूँ

झीना सा भी परदा क्यों
ये पवन हटाओ, देखूँ

सब कुछ तुम से लेकर भी
ख़ाली हाथों को देखूँ

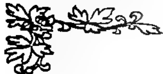
बाहों में जो आये तो
अपने बचपन को देखूँ

सोचा करता था न कभी
मैं भी अब कल को देखूँ

जब देखूँ फटती कोंपल
अपने होने को देखूँ

कुछ न रहा बस में 'भानु'
जो दिख जाये सो देखूँ





रात सारी झरना जागा
आह भरते किसने देखा

पेड़ निखरा जो फागुन में
चेत ही में आकर बिखरा

देख सपना चौंका जब भी
हाथ अपना सर पर रक्खा

फूल भेजा उन को हम ने
एक पत्थर बन कर लौटा

देख जादू इक बच्चे का
लौट आया क्रौंच मेरा

'भानु' ग़ज़लें कहते कहते
विदा इस जग से होना



आँगन में पत्ता खड़का
सलवट का सीना धड़का

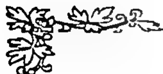
धरती से फूटा अंकुर
बूढ़ा था पत्ता बड़का

बरसे पत्थर सड़कों पर
लौटे घर कैसे लड़का

आग लगी जब पत्तों में
पत्थर का सीना तड़का

मुझ को तो अपना जीवन
जीना था चमगादड़ का

'भानु' थम पाता कैसे
उस का जब बाजू फड़का



दिन की खट- पट
निश की कट-कट

तुम से मिलना / था इक झंझट

तेरी रग रग / जानूं घट घट

भोला चहरा / लेकिन लम्पट

हाथ मिलाने / आया चल हट

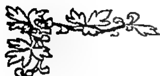
किधर गयी री / शायद पनघट

उस का हठ था / कितना नटखट

ताके जंगल / खोयी चौखट

'भानु' तेरा घर
बूढ़ा सा वट





जी रहे हैं सब भले
हैं मगर बिन घौंसले

हो गये हैं क्या से क्या
थे कभी अच्छे भले

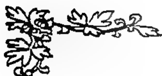
फिर उठी दुर्गन्ध कहीं
और किस के पर जले

तू किसी की भी नहीं
धड़कना है, धड़क ले

मौत ही को छोड़ कर
सब मेरे आगे चले

'मित्र' जायेगा कहाँ
घर हुए हैं खोखले





तेज़ी से जलने वाले
दीपक हैं बुझने वाले

क्या होगा कल का सूरज
जीने का कहने वाले

झौंके से झुक जायेंगे
फूलों से लदने वाले

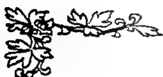
पानी से फट जाते हैं
पानी में तिरने वाले

दीवारें होंगी सूनी
पत्थर से लड़ने वाले

मौसम से बोले मौसम
तुम्हीं मुझे हरने वाले

'मित्र' तुम्हारे जीवन में
हैं पत्थर गिरने वाले





ऐसा कुछ कर जा
हर शक्ल निखर जा

सागर है जो तू
उछल कर बिखर जा

ये सूखा जंगल
पत्तों से भर जा

घर अपना न सही
मगर बराबर जा

न मिटा ऐसे तो
जो तू ने सरजा

बूँद लहू की है
उस से मिल कर जा

'भानु' मिलेगा कब
दीप जलाकर जा



धूप है दो-पहर है
ज़िन्दगी इक सफ़र है

साथ चलना है तो चल
इक घड़ी की उमर है

क्यों डरे डूबने से
अगर तू लहर पर है

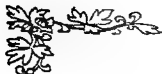
जा, इसी डगर से जा
मोड़ पे तेरा घर है

नाम पर दोस्ती के
अब ज़हर ही ज़हर है

गर्म हों आठों पहर
वो भी कोई नगर है

मौत से जनमने तक
ये भी तो इक सफ़र है





अम्बर है तू
क्या घर है तू

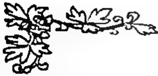
बाहर तो नहीं
भीतर है तू

प्रश्न हुआ मैं
उत्तर है तू

कुछ क़दमों का
अन्तर है तू

कब [illegible]
पत्थर है तू

देखूँ [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] है तू



बेरी सा, जो लगेगा
मेरे मन, वो रहेगा

झाँक मेरे नयनों में / तेरा चहरा मिलेगा

जिस रस्ते से आयेगा / मेरे घर से जुड़ेगा

उफनेगी नदी जब भी / सागर तक भी डरेगा

जम कर हेम हुआ पर / कतरा कतरा गलेगा

माटी से डरे है क्यों / कौंपल बन कर फटेगा

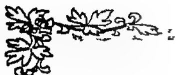
कड़वी तो होगी पर वो / बात पते की कहेगा

समझौते का हर शब्द / टुकड़ा टुकड़ा उड़ेगा

पा के अमृत भी आख़िर / घुटते हुए ही मरेगा

'भानु' जब ग़ज़ल कहेगा
अक्षर .ख़ुद ही बोलेगा





सूरज दिखने वाला था
लेकिन डूबने वाला था

वो जो मरने वाला था
कितना हँसने वाला था

निष्ठुर निकला यायावर
वो कब रुकने वाला था

नींद उसे कैसे आयी
रातों जगने वाला था

क्यों मारा पत्थर उस को
खुद ही गिरने वाला था

कैसी गरमी कैसी धूप
छाँह से तपने वाला था

पागल था सच है लेकिन
हमें समझने वाला था

अच्छा हुआ कि साँझ ढली
वरना बिखरने वाला था

'मित्र' ग़ज़ल सुन के कहोगे
वो कुछ कहने वाला था





काश ! मैं जानता
है कहाँ वो हवा

छाँव मिलती नहीं
पेड़ तक गिर गया

आप हँसते नहीं
है क्या मासला

देखते ही देखते
खण्डहर हो गया

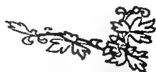
आग सुलगी वहाँ
मैं यहाँ जल गया

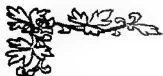
घुस गया साँप क्यों
तू अगर घर में था

चल दिया छोड़ कर
फिर भले क्यों मिला

इक हँसी दूँ तुझे
है यही कामना

'मित्र' अब क्या लिखूँ
ठीक हूँ, जानना





है एक विकल्प, सुनते हो
शीश ढको या पाँव ढको

कहाँ बिताये इतने दिन
कैसे बीती ये तो कहो

किया फूँक कर दूषित उर
अब उजड़ो या खेह मिलो

घर का पथ कब भूले पाँव
बाक़ी बिसरे तो बिसरो

माँगा वर विषधर का, अब
दृग त्यागो या कट जाओ

बचना स्वजन शूलों से
लगने हम को या तुम को

धूप - अंश है हाथों में
ये लो, घर पर फैला दो

क़लम आज भी रोती है
शब्दों की टीसें पूछो

'भानुमित्र', तू तीर्थ तेरा
धरती से बस जुड़े रहो





आ के कुछ अतिथि ऐसे ठहरे
कब दिया जले कब हवा चले

मित्र बैठे थे घात लगाये
कब दिया जले कब हवा चले

न छाँव न फूल न डाल न शूल / आ के चिड़िया अब कहाँ बसे

पाँव फिर वहीं पड़ते हैं क्यों / जिस सीढ़ी से निराश उतरे

इतना जल क्या पीया हमने / कि जलाशय सारे सूख गये

टल जाये हर बला रातों की / बाकी चार पहर भी दे दे

आती है गहरी नींद बहुत / हो कोई नहीं जब सिरहाने

रक्षा हेतु, माँगा इक साधन / सिर पे धरे हैं बारहसिंघे

मन-रक्तचाप बढ़ गया इतना / निकल रहा है धूआँ तन से

इकसार टपके सिर पर बूँदें / करता है चोट शब्द वैसे

हाँ, हम भी जिये बन कर पत्थर / कितने साँप सीने से निकले

कुहरे ने घेरा फूलों को / सूरज को देखा फूलों ने

'भानुमित्र' मौत भी टल जाती
कल्पित आहट जो सुन लेते



सूखी हुई है छत
बिखरे हुए हैं ख़त

डूब नयन-अंजन में
पलक से लिखे ख़त

ऊपर कोई नहीं
बस उदास इक छत

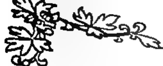
जल के अंक रह गये
वो ख़त है या है छत

होगी न जब वर्षा
कौन लिखेगा ख़त

गिरी चाँदनी तो
मैली हो गयी छत

लिखूँ तो ख़त रोये
न लिखूँ रोये छत





दरवाज़े सारे खुले रक्ख
ख़ुद को सब के सामने रक्ख

न बिखर जायें पल में कहीं
इन फूलों को अधखिले रक्ख

ये नगर अभी जल जायेंगे
जंगल को संभाल के रक्ख

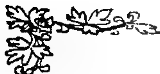
आने दे हर इक हवा मगर
सोते में ख़ुद को जगे रक्ख

झुका हुआ है सिर पर सूरज
अपने पाँव तने हुए रक्ख

कुछ देर बरसने दे पत्थर
कुछ देर मुट्ठियाँ कसे रक्ख

'भानुमित्र' समझे ना समझे
स्वयम् को पहिचान के रक्ख





कभी धरती कभी अम्बर देखूँ
कभी खुद को कभी मैं को खोजूँ

वही आँखें वही सागर लेकिन
भरी पुतली उसे कैसे देखूँ

मेरी हर साँस पूछे अब मुझ से
रहूँ भीतर कि मैं बाहर निकलूँ

इधर हवाएँ उधर तरंगें चले
शब्द पकड़ूँ कि मैं सागर उथलूँ

उसी वृक्ष तले घायल सा मैं
फिर वही झुकतीं बाहें छू लूँ

वो काटता जाये धारा जल की
हर बूँद को मैं बूँदों से जोड़ूँ





दरवाज़े सारे खुले रक्ख
ख़ुद को सब के सामने रक्ख

न बिखर जायें पल में कहीं
इन फूलों को अधखिले रक्ख

ये नगर अभी जल जायेंगे
जंगल को संभाल के रक्ख

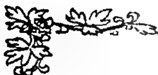
आने दे हर इक हवा मगर
सोते में ख़ुद को जगे रक्ख

झुका हुआ है सिर पर सूरज
अपने पाँव तने हुए रक्ख

कुछ देर बरसने दे पत्थर
कुछ देर मुट्ठियाँ कसे रक्ख

'भानुमित्र' समझे ना समझे
स्वयम् को पहिचान के रक्ख





कभी धरती कभी अम्बर देखूँ
कभी खुद को कभी मैं को खोजूँ

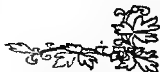
वही आँखें वही सागर लेकिन
भरी पुतली उसे कैसे देखूँ

मेरी हर साँस पूछे अब मुझ से
रहूँ भीतर कि मैं बाहर निकलूँ

इधर हवाएँ उधर तरंगें चले
शब्द पकड़ूँ कि मैं सागर उथलूँ

उसी वृक्ष तले घायल सा मैं
फिर वही झुकतीं बाहें छू लूँ

यों काटता जाये धारा जल की
हर बूँद को मैं बूँदों से जोड़ूँ





ये तेरा चेहरा है या पत्थर
क्या तू पहले से था पत्थर

अब समझा क्यों रथ टूट गया
आख़िर तू भी निकला पत्थर

श्रृंगार करें कब तक उस का
वो रहेगा पत्थर का पत्थर

दर्पण में देख न इठला तू
इक दिन हो जायेगा पत्थर

शीशे का बना है उस का तन
खाली हाथ ही जाना पत्थर

उस का तन छील दिया किस ने
पत्थर हो कर न रहा पत्थर

ऐ 'भानु' ! तपना कुछ धीमे
वरना, फट जायेगा पत्थर



ये संदेशा पहुँचाना उस को
ज़रा मुश्किल है भुलाना उस को

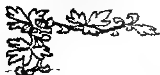
सफ़र में कैसा घुलमिल गया मैं
न पहिचाना न जाना उसको

एक इक कर पाँखी सब गिर गये
एक सूरज है, बचाना उस को

बाद लिखने के 'अरथ' भूल गया
अब कठिन बहुत समझाना उस को

कभी दुख घेरे और हँसी चाहे
पता मेरा भी बताना उस को

वृक्ष की बातें चिड़ी ही जाने
हो सके घर मेरे लाना उस को



मंज़िलें कहीं खो गयी हैं
सड़कें लम्बी हो गयी हैं

कहाँ ढूँढे अपनी तस्वीर
हवेलियाँ तक खो गयी हैं

उन्हें भी याद नहीं रखते
साँसें तन से जो गयी हैं

बरसते बरसते रेत में
अस्तित्व अपना खो गयी हैं

आज अच्छी नींद सोयेंगे
बारिशें छतें धो गयी हैं

शब्द खा गये अर्थों को
पुस्तकें व्यर्थ हो गयी हैं

ज्योति तो सामने है मगर
पुतलियाँ मेरी सो गयी हैं



मेरी आँखें, कलियों के होंठ
काँप रहे हैं फूलों के होंठ

जा पहुँचा हूँ शिखर पे लेकिन
बहुत शिथिल हैं पंखों के होंठ

इस धरती ने ओढ़ा सूरज
मन्द हो गये हीरों के होंठ

जब से निकला मन्दिर से मैं
तरस रहे हैं देवों के होंठ

अनछुए ही अब रह जायेंगे
झुलस चुके हैं ऋतुओं के होंठ

लिया है जब से हाथ में बस्ता
श्वेत हुए हैं बच्चों के होंठ

भटक रहे हैं, तड़प रहे हैं
कहाँ रुके हैं होंठों के होंठ



मित्र सखा किस के
खा पी के खिसके

वो हमें ही ढूंढे
हुए न हम जिस के

नभ से क्या नाता
हम हैं बारिस के

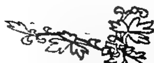
आज के लोग सब
हैं दास माचिस के

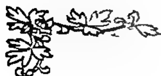
किस छत से निकलें
उस के या इस के

बता सके तो बता
वारिस बारिस के

अवशेष रह गया
ये तन रिस रिस के

दिन आजादी का
'मित्र' सन् चालिस के





शाम ढलने की सोचते हैं
फिर बहकने की सोचते हैं

रात भर कुचल कर जुगनू
फूल बनने की सोचते हैं

एक पीला आकाश ले कर
क्यों पिघलने की सोचते हैं

हैं बिल्लियों की क़ैद में सब
पर भागने की सोचते हैं

एक पग भी न उठे हम से
मगर उड़ने की सोचते हैं

कौन 'भानु' अब हाथ मिलाये
सब बिखरने की सोचते हैं





जीवन का हर पल है समर
है साहस तुझ में तो ठतर

मेघों की बूंदों से निखर
फिर बालू के कण में उभर

घूम रहा है अब भी क्यों
भीतर बाहर फिर भीतर

किरणों से झुंझे कैसे
तिमिरों से झुलसे है कमर

सागर जैसे मित्र सभी
छोटी सही पर हूँ तो नहर

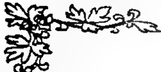
कुछ तो सोच रहा है तू
या फिर आँख हुई पत्थर

कहता है दे प्यार उधार
दे दूँगा दूध से धो कर

कुछ पल जीने की इच्छा
तो ले ले, मेरी भी उमर

'भानु' अब तो सिर ये उठा
नत मस्तक हर एक शिखर





थल है नभ है या जल है
सदियों सोचा इक पल है

जाने वाला पल कल है
आने वाला कल पल है

तम के तलवे ध्यान धरे
सूने घर का काजल है

वासी है अघुनायुग का
लेकिन आदिम जंगल है

पीड़ा में रह कर भी वो
आशाओं का मण्डल है

सूरज सा अस्तित्व मेरा
या इक तारा पुच्छल है

सिन्धु सरित कह दो निर्झर
'भानुमित्र' तो केवल है





सच्चा था या झूटा था
सच है यह, वह रूठा था

देख रहे थे वृक्ष खड़े
किस का पत्ता टूटा था

सहमी सहमी बेलें थीं
दुबका दुबका बूटा था

अन्धी भीड़ ने सब के साथ
अपना घर भी लूटा थां

लोग सभी थे अनुपस्थित
मात्र वहाँ अंगूठा था

वह मेरा फिर हो जायेगा
ये विश्वास अनूठा था

बिखरा बिखरा उस का मन
मेरा टूटा फूटा था

मेरी ग़ज़लों का सिन्दूर
'मित्र' शब्द से फूटा था





निज - करों - दूरियाँ मत बना
धरा को धरतियाँ मत बना

टपकते नयनों से अपने
पथों में नदियाँ मत बना

ये तुझे बहुत तड़पायेंगी
पृष्ठों पे पत्तियाँ मत बना

धूप भी खो जायेगी कभी
छाँव की छतरियाँ मत बना

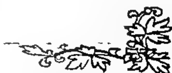
पेड़ जल जायेंगे धूम से
वनों में बस्तियाँ मत बना

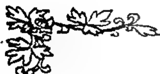
कौन पढ़ पायेगा इन को
पवन में सूक्तियाँ मत बना

अकेला चल जीवन को मगर
रेल की पटरियाँ मत बना

यह तन बड़ा घुलनशील है
कागदी कश्तियाँ मत बना

याद कर पुरानी बारिशें
रेत में स्मृतियाँ मत बना





रूठ गया मौसम से मौसम
हैं आँखें पत्थर की नम-नम

पात - नयन रहते हैं नम-नम
बिखर गया मौसम का मौसम

प्राण हरे इक सुर ने मेरे
छेड़ दिया फिर किस ने सरगम

पाँखी सभी उड़ गये छत से
कहता रहा छेड़ मत पंचम

प्रीत जली ऐसी मेरी ज्यों
दीप जला हो मद्धम-मद्धम

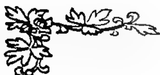
झूठी सच्ची अपनी बातें
सुन लेता है भोला प्रीतम

मेरे लिए दे दोगे तुम प्रान
पर हम भी हैं कब तुम से कम

उथल-पुथल क्यों मची हृदय में
नाद किया है किस ने इकदम

तिमिरों में जब खो जाओ तुम
'भानुमित्र' को लिखना पत्रम





ऋत की भृकुटि पे बल देखे
हम ने अनगिन छल देखे

बंजर धरती के भीतर
आहत से कुछ हल देखे

खेलते हुए घर में बच्चे
आज के सपने कल देखे

विस्मयकारी जग की नीद
जलते हुए जंगल देखे

जल में कैसी, हवा मिली
जड़ ने लक्ष - गरल देखे

जल न सका निश भर तू
वो थे मोम पिघल देखे

न दिखायी दी जीवन भर
भर कर, 'भानु', जल देखे





सपने जब भी देखे होंगे
कुछ बिखरे कुछ टूटे होंगे

वे जो उस से बिछड़े होंगे
साथ उसी के चलते होंगे

रोका होगा उस ने सूरज
सोये फूल खिलाये होंगे

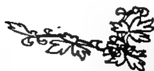
मुझ से ही उन के मन में
रेत के टीले उड़ते होंगे

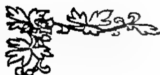
मिल कर प्रीत जताने वाले
मुड़ते ही सब झूठे होंगे

बीच समन्दर जीने वाले
तट से लहरें लखते होंगे

चित्र सजा कर दीवालों पर
सूने घर में बैठे होंगे

'भानुमित्र' सोये हैं लेकिन
भ्रमण नींद में करते होंगे





न कोई तुलसी न माला है
नगर में मगर कुछ उजाला है

ये गृहस्थियाँ ये बस्तियाँ, वाह
न कहीं द्वार है न ताला है

रक्त से बढ़ कर खरा निकला
पराये ने जिसे भी पाला है

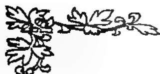
न आग जला नगर में मेरे
यहाँ हर घर मोम वाला है

कहाँ निर्माण करें बस्ती का
वहाँ न नदी है न नाला है

न गर्व कर अपनी आँखों पर
हृदय हज़ार आँखों वाला है

'भानुमित्र' ग़ज़ल नहीं कहता
यह वाक्य किस ने उछाला है





छोड़ पगडंडी अब चले हैं हम
ढूँढने घरों को बचे हैं हम

खोजते हैं बुद्धि के धनागार
खोखले जगत में रहते हैं हम

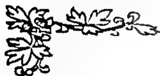
इधर से उधर बिखरते गये
घौंसलों से गिरे तिनके हैं हम

तू हमें क्या लूटेगा चल भाग
लूटने तुझी को खड़े हैं हम

कंकर न कोई फैंकना कहीं
पानी के वृत में बसे हैं हम

कोई दुख अब क्या सतायेगा
मौत को भी पहचानते हैं हम





लोग बहलते हैं मौसम से
रंग बदलते हैं मौसम से

देख लिया मिल कर मित्रों से
आग उगलते हैं मौसम से

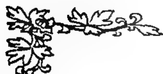
कैसे देखें हम जंगल को
मौसम जलते हैं मौसम से

इतने कष्ट दिये फिर भी वे
पीठ सहलते हैं मौसम से

जिन के ढके तन वे ही मेरे
पाँव कुचलते हैं मौसम से

'मित्र' प्रतिक्षा कुछ तो करिये
हिम भी गलते हैं मौसम से





जब भी कंकर फैंका पानी में
इक ज्वार सा आया पानी में

किस के उदास - दृग के अम्बर से
इक तारा और गिरा पानी में

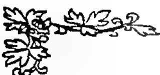
संग वृक्ष का छूटा जब से
सूख रहा है पत्ता पानी में

कैसे उजाड़ देता पथ वो मेरा
आँगन था फूलों का पानी में

केन्द्र में सिमटता गया खुद मगर
फैलता रहा घेरा पानी में

'भानुमित्र' जाये तो क्यों जाये
देख चाँद सा मुखड़ा पानी में





अब हवा कुछ ऐसी चलेगी
ज़िन्दगी साँस को तरसेगी

उड़ेंगें नभ में वो बुदबुदे
आ ऐ मौत ! ज़िन्दगी कहेगी

नदी होगी कूए भी होंगे
प्यास मगर प्यासी रहेगी

शवों को होगी वो दुर्गति
जलाने को अग्नि न बचेगी

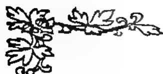
ले के कुछ पत्थर फिर इक नयी
पत्थरों की दुनिया घड़ेगी

सोच में डूबा सोचता हूँ
रात क्या ऐसे ही कटेगी

आयेंगे जब आप तो मेरी
'मित्र' राख ही शेष मिलेगी

•





घर का अपना नम्बर न बदल
शहर से आ कर तेवर न बदल

सोने की हो या रबर-जनित
मौसम के सम मोहर न बदल

नव-निर्माण किया कर लेकिन
इतिहासों के प्रस्तर न बदल

अच्छा है घट घट जल पीना
गाँव का लेकिन पोखर न बदल

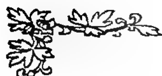
पेड़ के नीचे तू बैठा है
पर कहता है पतझर न बदल

केवल अपनी सुविधा के हित
पाँखी न बदल अम्बर न बदल

क्रान्ति आ जायेगी लेकिन तू
चहरा न बदल दफ़्तर न बदल

कहने के लिये इक शे'र नया
'भानुमित्र' कुछ अक्षर न बदल





बादल बूँदें चिड़ियाँ देखो
छागल बालें सखियाँ देखो

एक चक्र में घूमें सारे
सागर बादल नदियाँ देखो

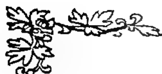
पंख पसारे अन्तर अम्बर
साहस रस्ते अँखियाँ देखो

धरती अँचल में क्या जानूँ
मिट्टी पानी कलियाँ देखो

जंगल जंगल घूमने वाले
मुड़ कर घर की गलियाँ देखो

छोड़ गये सब अब तो 'भानु'
चौखट आँगन परियाँ देखो





संग समय के चल रे बाबा
कह के गये बाबा के बाबा

बच्चों से कब गिरते हैं घर
वे तो हैं बस फूल से बाबा

हो सकते हैं कैसे मेरे
तेरे अनुभव तेरे बाबा

छोड़ के तन हम एक हुए थे
भेद हैं सब जीने के बाबा

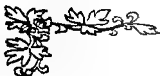
आओ हम लग जायें गले से
हो जायें कुछ हलके बाबा

कोई दवा हो तो बतलाओ
हम तो जले हैं छाछ से बाबा

जिस ने बुलाया हुए उसी के
हो कैसे तुम भोले बाबा

'मित्र' आँख में बस जायेंगे
छोड़ो सपने देखने बाबा





मैं तो इक जंगल जैसा था
जाने वह कैसा कैसा था

माना मैं तो ठीक नही था
तू ही बोल कि तू कैसा था

छेड़ दिया झरने को किस ने
मैं ठण्डे पानी जैसा था

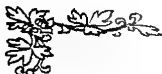
तेरा रक्त देख पाया क्या
वह भी तो मेरे जैसा था

देख तुझे इतना ही समझा
वह बस कुछ पर्वत जैसा था

वैसा ही हूँ सामने तेरे
संग तेरे जब शिशु जैसा था

भूख मिटी हो तो बतलाना
इस तन का टुकड़ा कैसा था





सग समय के चल रे बाबा
कह के गये बाबा के बाबा

बच्चों से कब गिरते हैं घर
वे तो हैं बस फूल से बाबा

हो सकते हैं कैसे मेरे
तेरे अनुभव तेरे बाबा

छोड़ के तन हम एक हुए थे
भेद हैं सब जीने के बाबा

आओ हम लग जायें गले से
हो जायें कुछ हलके बाबा

कोई दवा हो तो बतलाओ
हम तो जले हैं छाछ से बाबा

जिस ने बुलाया हुए उसी के
हो कैसे तुम भोले बाबा

'मित्र' आँख में बस जायेंगे
छोड़ो सपने देखने बाबा



पेड़ को बात सुनाते रहे
रास्ते और बढ़ाते रहे

हाथ आयेगी छाया कभी
पाँव को तेज भगाते रहे

रात दिन एक करने का हठ
धूप से छाँव मिलाते रहे

समझ से परे थी वो चर्चा
बस हाँ में हाँ मिलाते रहे

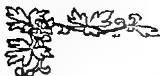
पार कर लेंगे नाला नदी
रेत में नाव चलाते रहे

थी हमें भी कल फुर्सत बहुत
बात में बात उठाते रहे

आप का कर्ज़ मेरे सर पे है
आप को याद दिलाते रहे

आस थी वो सुब्ह आयेगा
रात भर आग जलाते रहे

मौत आती है ये सोच कर
और की उम्र चुराते रहे



रात भर जगायेगा
स्वप्न क्या दिखायेगा

चाँद तो कहा मुझे
जोड़ कर घटायेगा

आँख ने बता दिया
होंठ क्या छुपायेगा

पकड़े गये आज तुम
बात क्या बनायेगा

कण कण बीज है
पेड़ क्या उगायेगा

प्रीत जानता नहीं
प्रेम क्या निभायेगा

खड़ा 'मित्र' सामने
और क्या सुनायेगा



समन्दर समन्दर समन्दर
देखें जिधर उधर समन्दर

तुझ में नहीं क्या क्या छुपा / झाँक अपने अन्दर समन्दर

डूब जायें मदिरा में तेरे / आज इतना उभर समन्दर

बाहर आया ऐसे क्यों / धरा से उमड़ कर समन्दर

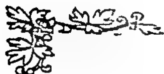
कहाँ ढूँढता है अब मुझे / हूँ तेरे भीतर समन्दर

मिलूँगा शाम को मैं तुम्हें / गगन से उतर कर समन्दर

क्या चैन मिल गया तुम्हें भी / दे कर मुझे ज़हर समन्दर

छोटा नहीं हृदय मेरा / आना मेरे घर समन्दर

चल रही है 'मित्र' साँस में
अभी तेरी लहर समन्दर



एक हृदय व्यापारी कई
है इक शिकार शिकारी कई

प्रीति न पूछ मेरे शहर की
एक बन्दर मदारी कई

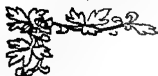
एक आँख से बच भी जाएं
हैं तलवारें दुधारी कई

उलझ गया हूँ व्यर्थ प्रेम से
है एक उदर उधारी कई

लिखूँ तो आना इस बस्ती में
चिकित्सक नहीं बिमारी कई

आभारी हैं सदा आप के
रातें 'मित्र' बिसारी कई





सुर एक सुन सितार कई
बस तार तुन झंकार कई

फूँकती है प्रान मुझ में / है साँस इक बयार कई

न ढूँढ तीर के सहारे/ हैं सिंधु के उभार कई

हाथ उस का सिर पे रहे/ है एक छत दीवार कई

कब आयेगा नम्बर मेरा / इक सवारी सवार कई

अभिनय करेगा कहाँ तक/ इस देश के उवार कई

खा गया धोखा, देख कर/ मुखड़ा वही निखार कई

प्यासे हो अब भी क्या तुम / कर लीं नदियाँ पार कई

जीना ही था उलझनों में / इक मस्तिष्क विचार कई

सच कहें तो सम्मानों में / एक है गर्दन हार कई

'भानुमित्र' ऐसा भवन
एक जंगल विहार कई





जहाँ जहाँ भी मैं गया
धुआँ धुआँ धुआँ मिला

घर का जला वन गया
जाए कहाँ वन का जला

क्या हुआ नैनों को / ऊषा ऊषा सूर्य ढला

जाना था न घर तेरे / फिर भी पाँव उधर उठा

इतना सा था बचपन / प्रातः मिला साँझ गया

कैसे गिरे मोती दो / लगता था मेरा क्या

बातें सब कहने की / तेरा क्या मेरा क्या

किसे किसे रक्खें याद / तू भी तो आज मिला

छत पर धुन थाली की / रात कहीं सूर्य उगा

बीस बरस ममता के / था इक पल प्रीत का

वसीयत में कुछ डिब्बे / हर डिब्बा रिक्त मिला



रिक्त अम्बर से पूछता क्या है
आप अपने को बाँटता क्या है

पेड़ पत्ते हैं अलग अलग कहाँ
शब्द की डालें काटता क्या है

मिटाना ही था फिर बचाया क्यों
बारम्बार फुफकारता क्या है

घाव कैसा है कहाँ पता नहीं
आप ही उपचार करता क्या है

हो रहा सब कुछ सामने फिर भी
दर्पण में बाल उखाड़ता क्या है

प्रातः रोष दृष्टि साँझ मौन हास
विरहपन क्या है गाढ़ता क्या है

सप्त-कोण-दृष्टि खोल देगी सब
सत्यता क्या है झूठता क्या है



आप आ बसे आँखों में
प्रान मिल गये साँसों में

प्रेम की बरखा होगी कभी
सोच रहा था रेतों में

गन्ध-हीन उर-मधुशाला
दृष्टि सुमन भर प्यालों में

साथ खड़ा दीवालों के
आँख लगी छत-छेदों में

आँसु बहायें तेरे लिये
नाव भी चले धारों में

वचन दिया था सूरज ने
होगा मिलन अंधेरों में

प्रेम कर के भूल जायें
तू ही लिख दे ग्रन्थों में

'भानुमित्र' निज को तराशो
कभी तो होगा हीरों में



बन्द रख पुराना पिटारा
खुल जायेगा भेद सारा

दे रहा दस्तक किवाड़ पर / मुझता हुआ अन्तिम तारा

देव कोई बस्ती में मिले / घूमता है मारा मारा

ढाल-ना था इस लिये ढला / हार-ना था तभी तो हारा

थी सभी को जीत की ललक / है कैसा ये भाई चारा

मामेकं शरणं ___ था कहाँ / किसी ने जब उसे मारा

नर्क है नर्क है नर्क है / सुनेगा कहाँ तक बिचारा

प्रेम है बस प्रेम और क्या / है ये भी क्या कम सहारा

एक बार देखा है जिसे / देख पायेगा क्या दुबारा

'भानुमित्र' चल, मिलें उस से
जो तुम्हारा है न हमारा



इक टीस उठी आँखों में
क्या बात हुई आँखों में

दिन का चहरा भूल गये / जब रात जगी आँखों में
उन की दृष्टि का क्या कहिये / एक ग़ज़ल थी आँखों में
होगा सपना कोई तो / खुली खुली सी आँखों में
बहुत लिखा था पढ़ न सका / पानी जैसी आँखों में
बातें यूँ ही होती हैं / बस आँखों ही आँखों में
फूल उसे समझा लेकिन / था काँटा भी आँखों में
हर आने जाने वाला / है कँवलों की आँखों में
सोते सोते चमक उठा / इक उलझन थी आँखों में

देख सकेगा 'भानु' क्या
एक सरीखी आखों में



तय कर लिया है हटने का फिर
औचित्य क्या है रहने का फिर

ये चाँद है जो साँसों सा थिर
ये चाँद भी तो घटने का फिर

हर एक घट की कथा सरीखी
क्यों इस कथा से, डरने का फिर

हम ने चुनी है अपनी डगर
होगा न कुछ दुख मरने का फिर

सब रास्ते हैं दोस्त मेरे
मैं हूं मुसाफ़िर चलने का फिर

ढलता नहीं है सूरज कभी
किन उलझनों में फँसने का फिर

तू है लचीला हर बात में
हर फ़ैसला है कहने का फिर

सब ने कहा है 'भानु' तुम को
है कैसा डर गिरने का फिर



छत से गिरता पानी देख
बादल जाते खाली देख

तरू से झरती पत्ती देख / जल में घुलती माटी देख

चौपथ में मिल जायेंगे / आज के राजा रानी देख

कैसे तन की नाव चले / ख़ाली मन की नद्दी देख

झूठी है ताली तेरी / मौजी शिशु की बोली देख

क्या सूंघे है बारिश को / आहें तन से उड़ती देख

पास खड़ा था मैं तेरे / दुनिया अन्धी कितनी देख

बाबा गये तो बोली माँ / अब तो बेटा साड़ी देख

सब को बाप समझती है / इक बच्ची भोली सी देख

कुछ है तेरे भीतर भी / समन्दरों में मोती देख

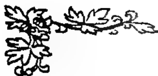
इक पल में सब सूख गया / मौसम की अंगड़ाई देख

कहाँ गया मरुथल मेरा / किस ने रेत बहाई देख

ना जाने कब भभक उठे / राख तले चिन्गारी देख

'मित्र' गले अब लग जा रे
मत कर आनाकानी देख





पेड़ के भीतर पेड़ छुपा है
शिशु का चहरा क्या कहता है

चौखट से चौहट का बन्धन
नीड़ से नीड़ज का रस्ता है

चली गयीं चीलें भी नभ से
चौराहे पर क्यों सोया है

बार बार खाता है ठोकर
कोई तो भीतर अन्धा है

देख डाकिया ख़ुश है लेकिन
चिट्ठी का कोना टूटा है

इतना सा है संग हमारा
रोटी से जो सिगरी का है

पाने के लिए और उजाला
रातों का बड़ा सहारा है

कीर कबूतर का शयनास्थल
'मित्र' वहीं तो उर बसता है





दीवारों पर धूप उतरती है
मुंडेरों का रूप बदलती है

अम्बर से आती है निडर मगर
खिड़की से चुपचाप उतरती है

चेतनहीन हुई संज्ञा जब से
अपनी ही छाया से डरती है

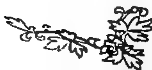
जाने किस पूँजी की खोज में वो
बच्चों का सन्दूक उलटती है

जीवन-पथ पर विचार की च्युटि
फिसल-फिसल कर चढ़ती रहती है

किया प्रताड़ित साहब ने मुझ को
बच्चों पर वो व्यर्थ बिगड़ती है

दिन भर करती रहती है भूलें
साँझ ढले फिर कान पकड़ती है

'मित्र' मेघ-मन बरसाता है हर्ष
उर-गागर आनन्द छलकती है





पहर पहर यों ढलता जाये
सारी रात सोचता जाये

दुख का इक झटका क्या खाया
कहर कहर ढकेलता जाये

फिर किस मूरत की आशा में
नित्य पत्थर फोड़ता जाये

कहीं नहीं मिलता घर उस को
कस्बा नगर भटकता जाये

संग आज तक था जो मेरे
वो ही मुझे भूलता जाये

नहीं भरोसा ख़ुद पर ही क्यों
अपना रक्त छानता जाये

बैठा हुआ बन्द कमरे में
काग़ज़ - युद्ध जीतता जाये

अपने सुख में हो 'मित्र' मगन
पर हवा में झूलता जाये





हम उस को झुठला न सके
पर खुद को समझा न सके

घर तक जा कर जा-न सके / उस को वापिस ला न सके
छत पर वर्षा किरणों की / पर आँगन चमका न सके
तेरे उर के जंगल में / आ न सके तो जा न सके
होंगे अतिथि चार दिनों के / आज तुम्हीं से जान सके
संज्ञा को अब कौन कहे / छाया को भी पा न सके
जीवन भर संग रहे मगर / कौन किसे पहिचान सके
सोते में हम हँसते रहे / जब जागे तो गा न सके
तेरे बंजर कानन में / उर का फूल उगा न सके

'मित्र' विवश है जाते हुए
अपना हाथ हिला न सके



जब कोई भी उर शुद्ध हुआ
तब चलो मान कर बुद्ध हुआ

जब हुआ कभी अति शक्ति प्रसार
यह निश्चित है फिर युद्ध हुआ

जिस ने फेंका पत्थर समझ
उस का मार्ग अवरुद्ध हुआ

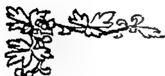
बात खरी थी चुभी तो होगी
मुझ पर साथी यों क्रुद्ध हुआ

अब धरती पर कहाँ चलोगे
पाँव तेरा नभ में उद्ध हुआ

अब अंधियारा कभी न होगा
इक ध्रुव सूरज उद्ध-बुद्ध हुआ

सत का कोई भी काट नहीं
क्या कोई नीर अशुद्ध हुआ

कैसे विस्तृत अब 'भानु' करें
छाया का वन अनिरुद्ध हुआ



जब सर्ग से दृष्टि मिला बैठे
हम अपना चेता गवा बैठे

उन को देखा निर्मल जल में / हम बदन अपना भुला बैठे

जब रात्रि मिले ज्योतिरिंगण / पोरों को पात बना बैठे

अपना तीरथ था शैल मगर / हर वृक्ष को शीश झुका बैठे

हम पीर बताने गये मगर / वो अपनी टीस सुना बैठे

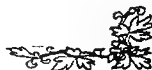
चुनने थे जंगली फूल मगर / काँटों में कर उलझा बैठे

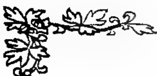
स्मृतियों के मन-आँगन में / भूले से कबूतर आ बैठे

ज्योतिपुंज से हम थे लेकिन / छाया से धोखा खा बैठे

उड़ जायेंगे ये रंग सभी / अपना ही चित्र बना बैठे

'मित्र' कभी तो आयेगी लहर
इस आस पे तट पर जा बैठे





हृदय वेरा झीलों का है
साथ अगर मीलों का है

डेरा हो तो ऐसा हो
जो नाम कबीलों का है

किस ने बन्द किया ये मुँह
ये शर तो मीलों का है

नगरों में जुगनूँ का झुण्ड
शायद कन्दीलों का है

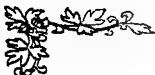
इक धड़कन ही है काफ़ी
यहाँ सदन टीलों का है

बैठ छोड़ कर वह डाली
त्रण- डेरा चीलों का है

अपना बिस्तर अपना है
बाक़ी सब कीलों का है

'मित्र' चलेगा सच कैसे
यह जगत हठीलों का है





जिस दिन आवरण हटाया
भीतर ख़ुद ही को पाया

देखा है जिस पल से तुझे
माया है न कहीं छाया

हूँ मुदित, अकेला तुम ने
था दुखी, मन जब भरमाया

लौटा है देर से लेकिन
घर तो अपने ही आया

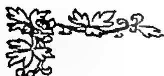
देखो मेरी आँखों में
क्या तू भी नज़र न आया

जब भी पूछा, हूँ मैं क्या
शव, मेरा ही दिखलाया

सूर्य नगर में रह कर भी
तम के अलावा क्या पाया

पाँव बढ़ाया 'भानु' जहाँ
पत्तों का मन मुरझाया





शब्द गूँजता नहीं, बोलता रहा
भेद ढूँढता नहीं, खोलता रहा

रंग कौन सा तेरे, चित्र में सजे
हर घड़ी रंग नया, घोलता रहा

देखता रहा उसे, बंद आँख से
और हाथ में हवा, तोलता रहा

झूलता नहीं कभी शब्द पेड़ पर
अवलम्बित जो रहा, वो लता रहा

टीस पीड़ भूल कर एक आतरू
और की उदासियाँ, टटोलता रहा

देख आखिरी गुहा अपने आप को
सोचता रहा, कभी तोलता रहा

'भानु' शूल फूल सा देखकर भी वो
बाग़ की दीवाल पर, डोलता रहा



जिस दिन आवरण हटाया
भीतर ख़ुद ही को पाया

देखा है जिस पल से तुझे
माया है न कहीं छाया

हूँ मुदित, ढकेला तुम ने
था दुखी, मन जब भरमाया

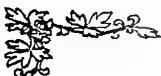
लौटा है देर से लेकिन
घर तो अपने ही आया

देखो मेरी आँखों में
क्या तू भी नज़र न आया

जब भी पूछा, हूँ मैं क्या
शव, मेरा ही दिखलाया

सूर्य नगर में रह कर भी
'तम के अलावा क्या पाया

पाँव बढ़ाया 'भानु' जहाँ
पत्तों का मन मुरझाया



जहाँ जहाँ भी छुआ है
नाम तुम्हारा गूँजा है

जाने कब विष उतरेगा / पेड़ों से बस लिपटा है

सुन्दरता की एक किरन / मिलते ही पी जाता है

तेरे रूप के सागर में / बूँद बूँद वह टपका है

जब भी आया सामने वो / इक बच्चे सा लपका है

तेरे बिन वह जाए कहाँ / अंग तेरे ही घर का है

तुझ से है वह अलग मगर / संग तेरे ही चलता है

गाँव शहर तेरा जो भी / नागिन सा बल खाता है

फैल गया विष तेरे घर / साँप तुम्ही ने पाला है

'भानुमित्र' सागर सूखा
फिर भी अम्बर प्यासा है





अपना परिचय करने वाले हैं
इक नव अभिनय करने वाले हैं

कल न उगेगा सूरज इस भय से
धूप का संचय करने वाले हैं

लोग यहाँ हैं अपने ही घर के
किस पर संशय करने वाले हैं

इक दूजे को समझ सकें इस हित
हृदय विपर्य्यय करने वाले हैं

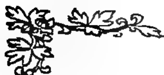
हम में से देनी है बलि कल से
मेरा निर्णय करने वाले हैं

पेड़ से किस की निकलेगी अर्थी
पाँखी विस्मय करने वाले हैं

बिखर जायेंगे सन्ध्या होने तक
अभिनव निश्चय करने वाले हैं

ये महानगर हैं 'मित्र' हमारा
नर्तन निर्भय करने वाले हैं





दल दल में फूल कमल का
यायावर हूँ मैं कल का

बोझ ओस का सह न सका
पत्ते से आँसू ढलका

बोझिल है सूर्य निशा से
किरनों से कर दे हलका

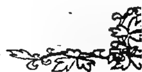
पिघल गये जब मेघ सभी
छागल का जल भी छलका

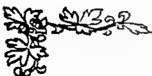
इक घर में रह कर पूछे
सदस्य तू है किस दल का

लौटा हूँ मैं बरसों से
क्या पहचानेगी अलका

मेरे अन्तस कोने में
जलता अलाव जंगल का

बरसों का है ये जीवन
है तो आख़िर इक पल का





ये पथ भी हैं स्थिर से
लौट पड़ें कब वे फिर से

वह उस को कैसे देखे
खुद हो घिरा घोर तिमिर से

रात्रि देव कुछ ओस गिरा
शुष्क-अधर उमा तिरसे

ले भी जाओ हृदय मेरा
बोझा यह उतरे सिर से

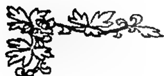
कब सुन ले वो मेरी पुकार
खुल जाये नैन बधिर से

उर-छत पर बरसेंगे कब
अम्बर वाले अस्थिर से

नहिं बोलेगा कुछ भी वो
क्या माँगे है मन्दिर से

'मित्र' यहीं है मोर फिराक़
क्या क्या न मिले शाइर से





दिवस दिवस तो घूमा जाय
रात कहीं भी ठहरा जाय

पत्ता पत्ता झड़ता जाय
मौसम का मन बदला जाय

पहली सूर्य किरन की भाँत / इक नव राग सुनाया जाय

मन की नदियाँ उमड़ रहीं / नैनों का तट फटता जाय

चुपके से शिशु वक्षों में / इक तितली सा चिपका जाय

बैठा मेरी हथेली पर / देख मुझे वो हँसता जाय

इक तू ही बस दिखता है / दृष्टि जहाँ तक पसरा जाय

छूट गया तीरथ पीछे / तीर्थ नया फिर ढूँढ़ा जाय

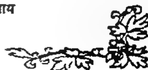
मेरा मन बातें मेरी / मैं कहता मैं सुनता जाय

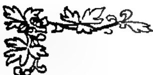
हर घर दीवारों से बंधा / किस का घर फिर खिसका जाय

कैसा होगा पेड़ मेरा / बीज मुझे इक दिखला जाय

डूब सोच के सागर में / वह कल से भी टूटा जाय

'भानुमित्र' कुछ कम कर तेज
शीशे सा तन तपता जाय





भीतर से मेरे निकला कोई
बाहर जा कर बिफरा कोई

मेरे मन के दरवाज़े से / आता कोई जाता कोई

थामा मोड़ मोड़ पर मुझ को / साथ साथ है चलता कोई

निकले साथी मौत से लड़ने / लेकिन कहाँ गया था कोई

जहाँ कहीं भी तू जलता है / हो जाता है जल सा कोई

धमक सुनी भारी जूतों की / सोते सोते चमका कोई

आ कर टूटे इसी बात पर / आओ कर लें साझा कोई

जब भी देखूँ कोई पत्थर / दिख जाता है मुझ सा कोई

एक विषैली हवा में मित्रो / टूटा फूटा छूटा कोई

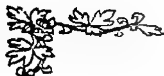
अपने जीवन के धागों में / है उलझा उलझा सा कोई

अपने घर तक आते आते / भूल गया है रस्ता कोई

एक सवेरा देखें हम भी / अपना सूरज होता कोई

'मित्र' देख कर लगा तुम्हें ये
दिवा सपन सा देखा कोई





हुआ कुछ एकदम
हताहत है अहम

रुक गये जब क़दम / बढ़ गये सब भरम

भेद गयी अन्तस / वो दृष्टि सूक्ष्मतम

भयभीत हूँ ये देख / अविवेक विहंगम

अजंगम जीवन / निराशा आजनम

खुलती नहीं पलक / अंधड़ मन निर्मम

आ, थाम ले हाथ / स्थिति है विषम

शर्तों की है ये भेंट / आयुध नवीनतम

संभल कर जाना / चढ़ा है तापक्रम

मत रुको, है कठिन / चलना पंथ परम

और न बना वरना / तोड़ देंगे नियम

अपना मिलना भी / होता नहीं सुगम

है मौत एक तरफ़ / एक तरफ है क़लम

सुनो, यह भी ग़ज़ल
'मित्र' मेरे अनुपम



ऐसी धूप कड़क कर आयी
पत्ते की नस भी झर आयी

आकृति बालू पर उभर आयी
आँख शून्य की भी तर आयी

परवत परवत बरसों खोजा
रूप मगर झाड़ कर आयी

रात बहुत भटकी पर मेरे
पद - चिन्हों पर चल कर आयी

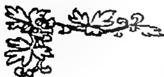
सुन्दरता की नदिया अनुपम
रस्ता इधर भूल कर आयी

तेरी उपस्थिति से जीवन
छू जो गयी चोट उभर आयी

अलग अलग जाना था हमको
साँझ ढले फिर क्यों घर आयी

मैंने माँगा ज़रा उजाला
पर वो सूरज भी धर आयी

'मित्र' समेटें कुछ ही किरणें
चलिये, धूप सँवर कर आयी



यह रूप यह धूप यह सुन्दरता
बाँधने का हठ है या चंचलता

इस भाँत ये नदिया जो न उछलती
ये सिन्धु भी निरन्तर न उमड़ता

दो शब्दों के बीच ढूँढ रहा हूँ
सन्नाटा भरा है या नीरवता

निर्भीक गगन का या निमंत्रण
होती जो पाँख तो मैं उड़ सकता

पाताल में उबलती ये अगनी
है तिमिर अन्तस का ये उज्ज्वलता

छूना न शूलों को यों उँगली से
मुर्झाए न कहीं फूल की कोमलता

भस्म हो गया जब जंगल सारा
है किस की अब यहाँ आवश्यकता

नास्तिक होकर भी गढ़ता है देव
इस से बड़ी है क्या आस्तिकता

है मौन हर दिशा धरती की अब
कौंपल से कोई अभिजित फटता



इक कथा पिछले पहर जब सुनाई
तब जा कर उस को भी नींद आई

दिगम्बर तक है तेरी ऊँचाई
पिण्डली से जब ये दृष्टि मिलाई

शूलों में सुगन्ध भरने का हठ
ये कैसी है तेरी बचपनाई

ध्यान में क्या डूबा मैं ज़रा सा
आत्मा तारिक से भी मिल आई

आप अपने ही मुलझ जायेगी
बन्द कमरे की है ये लड़ाई

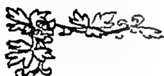
भाल पे तेरे ये कुमकुम बिन्दु
या सिंधु में चमके सूर्य-ललाई

ये कड़ाका और फिर ये पाला
यादों की ज्वाला किस ने बुझाई

जहाँ खड़ा हूँ मैं देख के उस को
आँख देवता की भी ललचाई

न जाने क्या पाप हुआ उस से
अभी तक न उस ने आँख उठाई

धरा से अम्बर तक 'भानु' है नाद
उंगलि तेरी इक सुर पकड़ न पाई



बूँद बूँद का प्यासा हूँ
ओस घड़े में भरता हूँ

मेरी उपेक्षा करता है / कहता हूँ तो झूठा हूँ

अम्बर सा है मन तेरा / मैं धरती का टुकड़ा हूँ

मुंडेरों पर है तू खड़ा / मैं डाली पर बैठा हूँ

प्राण मेरे हैं तेरे साथ / साँसों से मैं उलझा हूँ

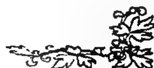
रहता है तू मेघों में / अपने आँसू पीता हूँ

हिमगिरि के तुम सम्राट / मैं वासी मरूथल का हूँ

लगती है जो बात बुरी / फिर तो मित्रो ! चलता हूँ

देख के तुझ को दर्पण में / सुख से मैं सो जाता हूँ

'भानु' ग़ज़ल की दुनिया में
तुम सृष्टा मैं दृष्टा हूँ





पेड़ के नीचे नंगी पड़ी है
सारी सृष्टि उस पे खड़ी है

भाल पे उस के ऐसी ठहरी
पात पे जैसे ओस पड़ी है

खण्ड खण्ड इक पाषाण हुआ
तेरी दृष्टि इतनी कड़ी है

इन बच्चों के हाथ में देखो
सौ बल्ले हैं, एक दड़ी है

किस से जकड़े हैं शीश सभी
क्यों न किसी सर अब पगड़ी है

स्वचालित हर कार्य-प्रणाली
किस को किस की सोच पड़ी है

फिर न मिलेगा समय किसी को
सम्मुख देखो एक घड़ी है

एक हँसी उस को भी दे दूँ
'मित्र' से जो उखड़ी उखड़ी है





हवा की चादर उठा के देखो
भरा है अम्बर हिला के देखो

मिला हुआ सुख लुटा के देखो
कभी तो दुख को बचा के देखो

सहज नहीं है उसे बचाना
नया घरौंदा बना के देखो

रुकी हुई हैं शैल की साँसें
प्यार भरा सुर सुना के देखो

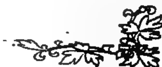
बिना तुम्हारे जहाँ अंधेरा
दिया वहाँ इक जला के देखो

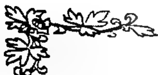
नया नया सा दृश्य मिलेगा
अगर पुराना हटा के देखो

ये रास कब से बँधी हुयी है
कभी तो इस से छुड़ा के देखो

झुका हुआ है इन्द्र-धनुष तो
झुका हुआ सिर उठा के देखो

झुलस रहा है ये 'भानु' कब से
इसे कभी तो हँसा के देखो





सता सता के मना रहे हैं
मना मना के सता रहे हैं

जला जला के बुझा रहे हैं
बुझा बुझा के जला रहे हैं

वो आ रहे हैं चले गये जो / इसी में घर को सजा रहे हैं

कथा हमारी सुनाएँगे जो / वो फूल हम ही खिला रहे हैं

ये धूप किस ने पिलायी हम को / दिया तुम्हारा जगा रहे हैं

करों में जिन के दी शक्ति तुम ने / तेरा भवन ही हिला रहे हैं

दिखा के जल को रंगीन पानी / सच्चाइयाँ ही छिपा रहे हैं

हवा की चादर में छेद कर के / शनैः शनैः विष पिला रहे हैं

तेरा घरौंदा कहीं भी हो पर / ये पाँव रस्ता बता रहे हैं.

तेरा ठिकाना तेरा ही घर है / ये बादलों को सिखा रहे हैं

उदास गलियाँ निराश चहरे / उजाड़ बस्ती बसा रहे हैं

कहाँ गये हैं शब्द पुराने
पता ये 'भानु' लगा रहे हैं





हवा की चादर उठा के देखो
भरा है अम्बर हिला के देखो

मिला हुआ सुख लुटा के देखो
कभी तो दुख को बचा के देखो

सहज नहीं है उसे बचाना
नया घरौंदा बना के देखो

रुकी हुई हैं शैल की साँसें
प्यार भरा सुर सुना के देखो

बिना तुम्हारे जहाँ अंधेरा
दिया वहाँ इक जला के देखो

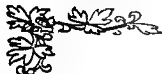
नया नया सा दृश्य मिलेगा
अगर पुराना हटा के देखो

ये रास कब से बँधी हुयी है
कभी तो इस से छुड़ा के देखो

झुका हुआ है इन्द्र-धनुष तो
झुका हुआ सिर उठा के देखो

झुलस रहा है ये 'भानु' कब से
इसे कभी तो हँसा के देखो





सता सता के मना रहे हैं
मना मना के सता रहे हैं

जला जला के बुझा रहे हैं
बुझा बुझा के जला रहे हैं

वो आ रहे हैं चले गये जो / इसी में घर को सजा रहे हैं

कथा हमारी सुनाएँगे जो / वो फूल हम ही खिला रहे हैं

ये धूप किस ने पिलायी हम को / दिया तुम्हारा जगा रहे हैं

करों में जिन के दी शक्ति तुम ने / तेरा भवन ही हिला रहे हैं

दिखा के जल को रंगीन पानी / सच्चाइयाँ ही छिपा रहे हैं

हवा की चादर में छेद कर के / शनैः शनैः विष पिला रहे हैं

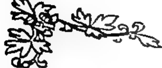
तेरा घरौंदा कहीं भी हो पर / ये पाँव रस्ता बता रहे हैं

तेरा ठिकाना तेरा ही घर है / ये बादलों को सिखा रहे हैं

उदास गलियाँ निराश चहरे / उजाड़ बस्ती बसा रहे हैं

कहाँ गये हैं शब्द पुराने
पता ये 'भानु' लगा रहे हैं





मुझे न देखना यों आँख फाड़ कर
खड़ा ये पेड़ भी मुझी को झाड़ कर

कभी उछाल कर कभी बिगाड़ कर
हरेक बात का न तू पहाड़ कर

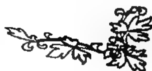
ये रश्मियाँ जला रही हैं तन मेरा
अभी न देख तू हवा उघाड़ कर

जिसे किया उम्र भर मैं ने प्रेम
चला गया वही मुझे पछाड़ कर

थी कौन सी उसे, उलझन-पाँव में
जो फेंकता रहा जड़ें उखाड़ कर

था सामने मेरे, क्या हुआ उसे
कि सो गया वहीं खुदी को गाड़ कर

दिन भर कहाँ रहा बता 'भानु' तू
निकल कर आ ये आस्मान फाड़ कर



गये समय जहाँ जला
वही शिखा मुझे दिखा

धुँआँ - धुँआँ न हो कभी
वही अलाव फिर जगा

भरी नदी को छोड़ कर
वो आदमी कहाँ गया

अजीब था वो मोड़ भी
कि रास्ते से मैं चुका

थी आह कौन सी कि वो
बसा नगर उजड़ गया

किसी तरह निशा कटे
जो भी हो कथा सुना

समा गया तुझी में अब
वियोग क्या प्रीत क्या

बिना किसी अमर्ष के
'मित्र' मुझे ग़ज़ल सिखा



इतने बरसों से आये हो
जाने का फिर भी कहते हो

आँख मिलायी किस जंगल से / अपनी चौखट भूल गये हो

शोलों सा जीवन जी कर भी / पानी में अब क्यों जलते हो

मुझ से बच कर जाने वाले / अनजानों में जा फिसले हो

काट रही है बिल्ली रस्ता / फिर भी आँगन छोड़ रहे हो

जो कहना है कह दो खुल कर / भीतर भीतर क्यों घुटते हो

भूल समझली तुमने अपनी / फिर क्यों पछताते रहते हो

नींद में तुम ने किस को देखा / सोते सोते चमक उठे हो

तुम थे कल तक मिट्टी जैसे / पत्थर जैसे आज मिले हो

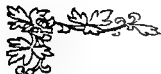
बाँट के खुद को दो भागों में / अपने को पूरा कहते हो

मुझ पर पलक बिछाने वाले / छाया से मेरी डरते हो

नींद नहीं आँखों मे लेकिन / सोने का नाटक करते हो

'भानुमित्र' हँस कर चार पहर
चार पहर किस को सहते हो





शाख़ों शाख़ों पंछी सहमे
वन में बोलें भी तो किस से

सारी रात कहाँ सोने दे
कर्ण में किट किट कोई करे

मेरा मन तो है थार भला
झरने सा इस में कौन बहे

क्यों मानव से है मानव दूर
जब जल भी जल से साथ मिले

सींचा है तेरी यादों से
आँगन में ढेरों फूल झरे

ऐसी नगरी में आन पड़ा
गूँगा बोले तो बहरा सुने

शत्रु से भी है प्रीत मेरी
मुझ से तो तेरा साथ निभे





ख़ुद से भी जब प्रीत नहीं
कहता है तुम मीत नहीं

मिलना हो तो मिष कैसा
मिलने की कुछ रीत नहीं

याद करेगा कौन तुझे
मेरा कोई अतीत नहीं

बैठे हैं सिर ऊँचा कर
जीते हैं पर जीत नहीं

कोई नया नाटक सोचो
अब तक जो अभिनीत नहीं

ठिठुर रहे हो तुम भी क्यों
जब कि अभी तो शीत नहीं

ऐसी छत का मेरा सदन
भीत नहीं भयभीत नहीं

'भानु' नहीं तो कुछ भी नहीं
ग़ज़ल नहीं, संगीत नहीं



भूल गया था फिर याद आया
संस्मरण जब उस ने सुनाया

किस धुन ने फिर शब्द जगाया
एक स्वर ने कितना रूलाया

पुष्प हजारों बरसे इक संग / जब डाली को उस ने हिलाया

धूपों से जल जाऊँ तो क्या / मगर चन्द्र ने मुझे जलाया

रात में देखी थी इक बिल्ली / जगते ही तोते को उड़ाया

औरों को वे क्या देते दोष / खुद थे नाविक खुद को डुबाया

वे न रहे ये सन्देशा भी / हाथ मेरे उन तक भिजवाया

एक घौंसला था बस उस पर / सारा जंगल किस ने जलाया

पहले ही से क्या थी कमी जो / फिर काँटों को तुम ने सजाया

कह भी देते जो कहना था / मन का बोझा व्यर्थ बढ़ाया

'मित्र' कामना शुभ कैसी
बरस बढा इक बरस घटाया



आ जरा अन्दर
क्यों खड़ा बाहर

अब नहीं कोई
फिर भला क्या डर

आ रहे हैं वे
प्रतिक्षा तो कर

देख ले उस को
कोर है न कसर

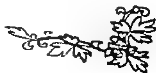
आँख से नीचे
तू कभी न उतर

सब कहा तेरा
मान तो लूँ ! पर

शेष हैं अब तो
खण्डहर, पत्थर

फिर मिलें न मिलें
देख लें जी भर

देखता है वो
'मित्र' का सागर



गन्धों का व्यापार करे
यादों को साकार करे

दिन के सारे सपनों का
रातों में आकार करे

नाम तेरा ले कर ख़ुद को
अपराधी हर बार करे

पलकों से ढक सूरज को
क्यों दिन में अंधार करे

इक विरोध के नाम पे वो
रेतों की दीवार करे

अपनी बूढ़ी आँखों में
देवों के अम्बार करे

कैसे घर हो उसका भवन
कव्वों से जो प्यार करे

'मित्र' वो आये न आये
क्यों ख़ुद को बीमार करे



चाँद तारों में अकेली है
रात आँखों में अकेली है

आज कोई फिर नहीं आया
बात होठों में अकेली है

लूट लेंगे सुब्ह होते ही
गंध पुष्पों में अकेली है

देव बनाया अंगों का पर
सोच शिल्पों में अकेली है

मैं धरा पर कहाँ तक ढूँढूँ
जो क्षितिज में अकेली है

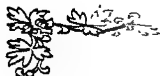
जो सब के साथ चली मित्रों
आज नगरों में अकेली है

कौन आवाज़ें सुने मेरी
शामियानों में अकेली है

मौत की बातें करें सारे
मौत प्राणों में अकेली है

'मित्र' ये कहीं खो जायेगी
ग़ज़ल नादों में अकेली है





सागर सा मेरा ये मन
अम्बर से ऊँचा ये मन

घटा बढ़ी का है स्वभाव
इधर किधर अटका ये मन

खो गया है जाने कहाँ
पास मेरे तेरा ये मन

डूबा ही जाता हूँ मैं
भर आया किस का ये मन

वो सपना लायें कहाँ से
जो देख रहा था ये मन

समझाऊँ कैसे तुम को
तेरे ही जैसा ये मन

किस किस को याद रखें हम
हर इक ने तोड़ा ये मन

'भानुमित्र' दीवारों में
कब तक भटकेगा ये मन





कोई न था दरवाज़ा
किस ने कहा फिर आ जा

लाऊँ कहाँ से वो दृष्टि
जो कर सके अन्दाज़ा

जाऊँ बच के कैसे मैं
मिलता नहीं दरवाज़ा

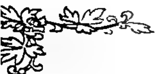
इन रेत की आँखों को
बादल कहाँ । समझा जा

किस की सुनाएँ कहानी
रानी रही न राजा

मैं भी लिखूँगा चिट्ठी
अपना पता देता जा

'मित्र' लड़ ले बारम्बार
मगर मत कह, चला जा





जो चाँद देखा बढ़ा बढ़ा सा
वो चाँद देखा घटा घटा सा

हर पेड़ पौधा हरा हरा सा
है मौसमों पर रंग चढ़ा सा

अब याद आना बहुत कठिन है / जो सोचता था पड़ा पड़ा सा

जहाँ जहाँ तक देखूँ जिधर भी / हर एक घर है भरा भरा सा

सहन करेगा फिर चोट कैसे / ये घाव तो है अभी हरा सा

इन बालकों की न पूछिये कुछ / जब आदमी है डरा डरा सा

विलग हुए तो मैं रोया कितना / जब वो गया तो रहा ठगा सा

चहरा कभी जब उठा के देखा / हर बार पाया बुझा बुझा सा

जिस ने मुझे फिर दिया है जीवन / वो आदमी था या था ख़ुदा सा

ये पाया मैंने गया जहाँ भी / जंगल उदासी नगर दिलासा

जब जब रचा था बिखर गया सब
ज़िंदा है 'भानु' मगर घुटा सा





मेरी क़लम से मसी नहीं बही
कई दिनों से ग़ज़ल नहीं कही

बिखर गये हैं शब्द नयन बसे
कथा हृदय की जो अनकही रही

बहुत सो लिये अब उठने भी दे
मुंडेर पे मेरे चिड़िया चहचही

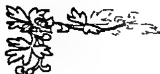
घने मेघ की हँसमुख बिजलियाँ
न सही प्रतिदिन यदा कदा सही

भरोसा नहीं इस युग का मुझे
हरेक युग की हर लहर सतही

लिये ज्ञान-फल ध्यान-तन फिर भी
वृक्ष की तरह झुका रहा वही

चले कहाँ ढूँढ़ने लिये दिया
'मित्र' ग़ज़ल का उद्धरण तुम ही





पेड़ लिये पीड़ों का सोचूँ हूँ
पास तेरे आऊँ तो क्यों आऊँ

मैं सागर में अम्बर में धरती
फिर भी कैसे तेरा रूप धरूँ

बरस रहे मेघ यहाँ कल से
कंकर ही क्यों नहिं फेंक देखूँ

क्षार-क्षार सा है ये मेरा तन
कुछ गंगाजल ही पी कर परखूँ

सभ्य नगर का वट है तू,मैं तो
वन की इक पत्ती का पौधा हूँ

अपना ही घर बना के इक जंगल
अपने मन का आदि-पुरुष आँकूँ

'मित्र' बदल कर जीवन देख लिया
छोड़ जगत को कहो कहाँ जाऊँ





रात की धूप का सफ़र है
मगर सोया हुआ नगर है

सूर्य कल रात में गिर गया
ये तो अख़बार की ख़बर है

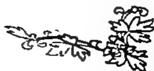
टिमटिमाती हुयी धरा है
या किसी झील का असर है

दृग ऐसी प्रभा से भरे
यह किसी आयु का असर है

छोड कर अब कहाँ जाओगे
आप का रास्ता इधर है

गुम हुए आप के नगर में
आप का हृदय-पथ किधर है

'भानु' चल दिये उस डगर पर
हर ग़ज़ल जहाँ इक भँवर है





सम्बन्ध अगर परस्पर नहिं होता
पॉखी के बिना ये अम्बर नहिं होता

न समा जाती यदि नद्दी की तरह
आँख के पीछे समन्दर नहिं होता

वन-वृक्ष अगर असभ्य कहे जाते
किसी नगर में कहिं घर नहिं होता

पतन कभी न तेरा हो पाता अगर
घर का हो कर जो उधर नहिं होता

मन्दिर मस्जिद गिरजा गुरुद्वारा
कहिं नहिं होता जो पत्थर नहिं होता

मैं भी कहिं मिट जाता स्व-पथहीन
जो किसी के समानान्तर नहिं होता

तम के शिविर से लाये कौन सन्देश
'भानुमित्र' वहाँ अक्सर नहिं होता





सूरज से वे बहुत जले होंगे
पर्वत दिन भर जो पिघले होंगे

जुगनू से कब तक बहले होंगे
पुर्ज़ों से जो लोग टले होंगे

रहा भटकता यों ही सारा दिन
प्रिय कितने घर से निकले होंगे

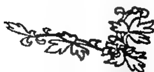
सड़कों पर जन्म लिया जिन्होंने
उन के भी कुछ स्वप्न फले होंगे

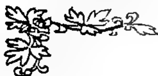
पीड़ दिखाते फिरते हैं हम पर
घायल पछी भी तो पले होंगे

जो सजाते हैं कैक्टस घरों में
उन के मन भी क्या उजले होंगे

जिन के सिर है यादों की गठरी
वे लोग अभी तक अधजले होंगे

'भानु' किसी के उर को न जलाना
इक दिन हम भी आग तले होंगे





उलझनों से सुलझते ही नहीं ,क्यों लोग
संभल कर भी संभलते ही नहीं,क्यों लोग

काटते हैं बराबर पेड़ के चक्कर
रास्ते याद रखते ही नहीं, क्यों लोग

नक्शे पर उगा लीं देश की खेतियाँ
धरती पर उभरते ही नही क्यों लोग

मैं खुला ही खड़ा था भूमि पे स्वतंत्र
मकानों से निकलते ही नहीं, क्यों लोग

ये गगन भी झुक कर आ गया भू तक
तारे अब तोड़ते ही नही, क्यों लोग

छेदते हैं बाँसों से घन बादलों को
मगर जम के बरसते ही नही,क्यों लोग

हरिक उत्तर उस का सही है लेकिन
समझ कर भी समझते ही नहीं,क्यों लोग

विस्मय है जल जाते हैं जब पानी से
लावे से उबलते ही नहीं, क्यों लोग

झाँकते हैं आँख से निरन्तर 'मित्र' मेरे
पर उर में उतरते ही नहीं, क्यों लोग





तू अपना न पता देगा
यों किस किस को भुला देगा

भेद मेरा न बता उस को
वो मुझे भी बता देगा

सूखे हैं सारे बादल
नदियों को समझा देगा

काम न आया यदि इक बार
रातों रात भुला देगा

इक झूठ छुपाने के लिये
बलि हर सत्य चढ़ा देगा

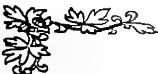
सिंधु तले दुख चिन्गारी
वरना आग लगा देगा

जब भी पूछें सच उस से
सारा ध्यान बँटा देगा

तो उस के घर उत्सव है
तुम को भी कहला देगा

मन ही नहीं 'भानुमित्र' जब
देगा तो फिर क्या देगा





संग मेरे वो जला होगा
संग मेरे जो चला होगा

सागर तक उथला होगा
जब भी हेम गला होगा

जिस दिन तुम लौट पड़ोगे / धोखा वह पहला होगा

वो, गिर पड़ा है फिर से / अभी अभी संभला होगा

घर आयी सुगन्ध मेरे / वन में आम फला होगा

अंग अंग से फूटे रंग / तितली संग पला होगा

इधर यहाँ सूर्य उगा है / मगर उधर तो ढला होगा

फिर उपदेश दिया उस ने / फिर किसी को छला होगा

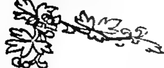
सूख गये हैं बाग़ सभी / घर में तो गमला होगा

इक इत्र हेतु अनगिनत / फूलों को मसला होगा

याद करूँ मैं जीवन भर / वह मौसम अगला होगा

'भानुमित्र' वो भला होगा
पत्थर जिसे लगा होगा





वह एक आस्मान है
फिर भी क्या झुका न है

उस को न खींच और तू
टूट पडेगी कमान है

उस को न छेड़ इस तरह
वो तो अभी अंजान है

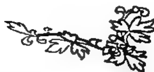
यायावरों ! रुको ज़रा
ताके खुला मकान है

पर्वतों पर चढ़ के देख
हर तरफ़ इक ढलान है

छुप के करे वार मगर
इस का उसे ध्यान है

बन गया शब्द नगर पर
न जंगल न उद्यान है

पुकारे कौन 'मित्र' अब
जान है न पहिचान है



अतीत से मिलने की सोचना, व्यर्थ
भविष्य के जीने की कल्पना, व्यर्थ

अजान का हो जाना असंभव नहीं
प्रीतों के करने की योजना, व्यर्थ

बंध गये टूटे बन्धनों में अगर
गाँठों के रिश्ते फिर खोलना, व्यर्थ

न क़ैद कर सूरज को आप का वरना
किसी उजाले के लिए ताकना, व्यर्थ

उजड़ गये जो सपने रात में सभी
वही स्वप्न आँखों में खोजना, व्यर्थ

भटकावों में है हर आदमी यहाँ
मकड़ी के जालों से उलझना, व्यर्थ

समीर हो मिट्टी हो स्वर या अगन
कभी किसी लहर पे नाम लिखना, व्यर्थ

वन में भी ऐ 'भानु' है शान्ति कहाँ
अपने ही घर से फिर भागना, व्यर्थ



सोने के पिंजरे में तोता है
मगर आदमी, घर में रोता है

इक दिन होगी अन्धी ये धरती
अम्बर प्रतिदिन तारे खोता है

तुम बूँद का बोझ उठा नहिं पाते
बादल हर सागर को ढोता है

पतझड़ से पहले पूछें पत्ते
पेड़ अभी से ही क्यों रोता है

इस बात पे कैसे विश्वास करें
जो होना है वो ही होता है

जो रोता नहीं अकेले में अक्सर
पलकों को चुपचाप भिगोता है

सदियों में होता है कोई जो
एक बीज, हँसने का बोता है

'मित्र' कैसा भी हो हर समय मगर
मूड हमारा अच्छा होता है



नदी बहती है फिर भी धार नहीं
दिया कोई आँगन के पार नहीं

अधूरे हैं हम लोगों के संवाद
अभी तो जुड़ भी पाया तार नही

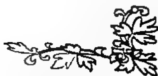
जन्तर मन्तर जैसा ये किस का निवास
किसी ओर निकलने का द्वार नहीं

अब हम रहें कहाँ जा के सुरक्षित
हमारे लिए एक भी दीवार नहीं

जिधर भी देखें हैं कंस के अंश
कोई लेकिन लेता अवतार नहीं

उसे पकडूँ भी तो कैसे पकडूँ
उस का जब कोई भी आकार नहीं

सुनेगा कौन दुखों को 'भानु' तेरे
प्रेम भरा अब ये संसार नहीं





अपने घर में अपना ही घर ढूँढूँ मैं
डरता था जिस से वो ही डर ढूँढूँ मैं

अपनी दीवारों में सुलझा था न कभी
उलझा हुआ आज वही सर ढूँढूँ मैं

चैन मिला इतना कि चैन से घबरा गया
हो न जहाँ कोई ऐसी घर ढूँढूँ मैं

निनिमेष - नयन देखा तो पायी दृष्टि गुम
किस किस का पथ, किस किस का घर ढूँढूँ मैं

जितनी बार उड़ा उतनी ही बार गिरा
न उड़ें न गिरें बस ऐसे पर ढूँढूँ मैं

पत्थर के संग रह कर पत्थर हुए सभी
कभी पिघल जाये वह पत्थर ढूँढूँ मैं





हमें वे जाल में फँसा देते हैं
ये जान कर भी पर कटा देते हैं

हँसी के घौंसले जो चाहे हम ने
तुड़े मुड़े से घर दिखा देते हैं

भर सके न वो सिसकते हुए घाव
जले पे और नमक लगा देते हैं

जो उड़ गया वहीं स्वतन्त्र हो गया
जो बच गये, कहीं जला देते हैं

व्यथा-वियोम जब बताने आयें
व्यथा धरा की सुना देते हैं

हुए घायल शरों से ही तुम्हारे
चलो, घर ही तेरा सजा देते हैं

दिशा कोई नहीं दिखायी देती
मगर पंख तो फड़फड़ा देते हैं

घिसे पिटे हुए शब्द सीख लिये
'मित्र' वे ही तुम्हे सिखा देते हैं





व्यर्थ गया पत्थर के नीचे दबना भी
काम नहीं आया कुछ मेरा जलना भी

अनगिन मानव हृदय कक्ष में रहते हैं
इक इक सत्य उजारे उन का बसना भी

अच्छा है सौ विद्वानों के संग रहें
व्यर्थ यहाँ मूढ़ों का राजा बनना भी

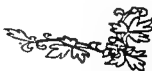
सूर्य ढलेगा तारे आ जायेंगे साथ
यात्री तुझे थकना तो है पर चलना भी

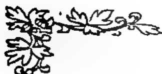
घिर कर मोह - उजालों से हम अन्धे हैं
रास नहीं आया सूरज का ढलना भी

काले मेघों से है शहर ये आच्छादित
रस्ते में घर जाते हुए संभलना भी

उचित नही निश में हो बिस्तर सलवटहीन
नही मगर शुभ रात किसी घर रहना भी

'भानुमित्र' क्या किया ले के जनम तू ने
काँधों पर था बोझा तेरा मरना भी





जगते हैं कुछ लोग हथेली देखते हुए
बहुत कम रह गये हैं धरती से जुड़े हुए

करते हुए प्रार्थना न सोच और अन्यथा
रह जायेंगे ये हाथ उठे के उठे हुए

जीने के सारे ढंग लाये नहीं थे साथ
ये रंग सारे वरना ये कब के उड़े हुए

आते हैं समय बिताने ये श्रोता, उपदेशक
आने के पहले ही हैं सब कुछ समझे हुए

वृक्षों के मन मुटाव ने झर्झर किया हमें
दो चार बचे हैं पत्ते वे भी मुड़े हुए

अपना मुखड़ा छोड़ गये बिछड़े, जब हमसे
अगले पल निकल पड़े फिर मुखड़ा बदले हुए

है सब परिवर्तनशील तो 'भानुमित्र' फिर
क्या रोक पायेगा अपने को बदलते हुए



हर खण्ड इमारत का खण्डर लगता है
हरा भरा वन जैसे बंजर लगता है

सान्त्वना दें क्या जा कर उन पेड़ों को
बसन्त का हर पल्लव झरझर लगता है

किस से करें शत्रुता किसे से घृणा करें
भीतर है जो वो ही बाहर लगता है

कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई शिव
वंशज आदिम का पुष्कर लगता है

विभत्स दिखायी देता है जाने क्यों
जब सो जाये तो अति सुन्दर लगता है

जिस ने भी ये गली नगर घर सजवाये
या तो नारायण या फिर नर लगता है

जिस में सरदी गरमी बरखा कुछ न रहे
'मित्र' यहाँ हर मौसम पत्थर लगता है



हर पर्वत से जैसे नदियाँ निकलें
मेरे उर से इतनी गलियाँ निकलें

आँखों से चहरों की गलियाँ निकलें
मरू के तन से जैसे सखियाँ निकलें

तुम तक पहुँचे हर सुन्दरता मेरी
हर सुन्दरता से लख परियाँ निकलें

मन - आँगन में आ कर बिखरी जायें
मेरी छत से जब दो कड़ियाँ निकलें

दिख जाते हो सपनों के सपनों में
दरपन से बस पवन लहरियाँ निकलें

हो जाता है जब फीका सूरज भी
रूप नहा कर छत से चिड़ियाँ निकलें

इक सागर है हर मानव के मन में
मन्थन जो कर ले तो निधियाँ निकलें

कोई तो संज्ञा होगी 'भानु' यहाँ
मिल जाये तो अपनी कमियाँ निकलें





उर के जंगल में क्यों आग लगाता है
सीमा से अपनी क्यों बाहर जाता है

हम तेरे थे हैं भी और रहेंगे भी
जाते हुए हमेशा यही पढ़ाता है

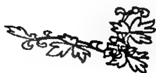
दुख का आज किसी को ज्ञान हुआ लेकिन
पश्चातापों की क्यों पीर बढ़ाता है

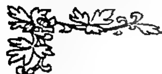
क्या है टीस विदाई की वह क्या जाने
आता है वह और चला भी जाता है

तू निश्चित छाँह में उर की सो जा पर
मन-डाली का पाँखी कहाँ उड़ाता है

चौंक उठा अक्सर गहरी नींदों से मैं
दिन में व्यर्थ स्वप्न क्यों दिखाता है

रंग नहीं, आकार नहीं, गन्ध नहीं, सुन
जल में लेकिन पर्वत भी बह जाता है





भाँत भाँत के सदन बने हैं पेड़ों में
पाँखी वरना क्यों आते हैं पेड़ों में

सात सुरों में पारंगत हैं फिर भी वे
राग आज भी सीख रहे हैं पेड़ों में

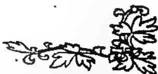
पुनर्जनम है तो जननी फिर से देना
जनम जहाँ पंछी लेते हैं पेड़ों में

डरते हैं लोग शरण में जाने कैसे
यात्री तो निर्भय सोते हैं पेड़ों में

अब क्यों नहीं दिखाई देते हैं पाँखी
क्या साँप कहीं से आ गये हैं पेड़ों में

आजकल शहरों जैसे हो गये हैं वे भी
फूल, फल न पत्ते धिरते हैं पेड़ों में

'भानुमित्र' जो कुछ भी कहता फिरता है
बचपन में सब शब्द सुने हैं पेड़ों में





जीवन तो फटा वस्त्र है सिये जाओ
हर इक बूँद लवणीय है पिये जाओ

उपेक्षित से हैं अंग अंग तुम्हारे कब से
जागो, बुलाते हैं मन के हाँसिये, जाओ

चला के ख़ुद हँसी देखती नहीं जब तुझे
सुख के द्वार तक फिर तुम किस लिये जाओ

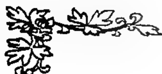
जाने या अनजाने हुआ तो है तुम से
अब भले ही तुम पछतावा किये जाओ

गुमसुम से रहा करते हैं अधिकतर लोग
दो चार को दो चार हँसी दिये जाओ

देता रहा तुम्हें जो कुछ मिला था मुझको
तुम भी किसी को अच्छा है कि दिये जाओ

'भानुमित्र' अपने जंगल में है तू ठीक
असमय किसी के यहाँ किसलिये जाओ





आख़िर मेरा हृदय भी बाँट कर गये
कुछ हिमालय गये कुछ समन्दर गये

मैं ने भी याद कहाँ रक्खा उन को
अच्छा है जीते जी भूल कर गये

मैं ने जिन्हें पलकों पे सजा रक्खा
जाते हुए काँधे पे बींट धर गये

अनिश्चित रहे जीने की चौखट पे हम
कभी बाहर गये, कभी अन्दर गये

कँवलों में रख दीपक समझा जैसे
हर कमरे में हम कुछ पुंज भर गये

कालिमा शहर के सिर पे छायी न थी
आँधियों के नाम से लोग डर गये

अब और क्या क्या देखना रह गया
हमारे सामने बच्चे बिखर गये





गर्व रक्खो मगर अहम् न करो इतना
गिर न जाओ कहीं तेज न चलो इतना

छोर क्षितिज का न पकड़ पाया कोई
जल पड़ोगे धरती पर न उड़ो इतना

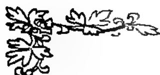
धुँधले से चिह्न रेत की लकीरों में
कभी न कभी तो मिलेंगे, खोजो इतना

सब जहाँ बैठ सकें विलोम स्वभावी
मेरे घर में इक पेड़ बड़ा हो इतना

नियम इतने बनाये कि सब उलझ गये
कहीं मर न जाये और न बाँधो इतना

पशु, पाँखी, सूर्य, सितारे सब सुनो मेरी
मित्रो ! रहूँ आदमी कर्ज़ करो इतना





आकाश अपना तत्व खोता जा रहा है
रास्ता रवि का भंग होता जा रहा है

अब चीखना बन्द कर ये भी तो देखिये
आप का बच्चा बड़ा होता जा रहा है

जिन खेतियों को खा गये जानवर कल ही
उन्हीं खेतों को पुनः जोवा जा रहा है

रात सोया था चैन से मैं छत के नीचे
कौन है जो बिस्तर भिगोता जा रहा है

मछलियाँ जातीं नहीं कुए को पर आदमी
खुद को ही कुए में डुबोता जा रहा है

पत्तों को भी जल्दी थी नये जंगलों की
अस्तित्व, हवा में ढोता जा रहा है

अभी तो 'भानुमित्र' हुआ है प्रातःकाल
अभी से 'भानु' क्यों सोता जा रहा है





मरूथल मन की लहरों में कभी समन्दर था
अभी जो मेरा निवास है कभी तेरा घर था

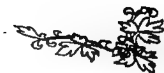
सभी खिड़कियाँ आँखों की खुली थीं हर समय
कहीं बीच में तेरी यादों का पत्थर था

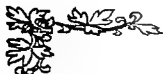
इक जगह रहा अचल अभी तक जीवन में
वो भ्रम में कि मैं कभी इधर कभी उधर था

मेरे व्यवहार से क्यों अचम्भित हुआ तू
रगों में मेरे तेरे ही रक्त का असर था

चढ़ती ढलती उम्र में अन्तर होता ही है
आज है शान्त सागर जो कभी बवन्डर था

कब तक करता रहता घृणा मैं राक्षस से
हर देव की तांई वह भी तो अजर अमर था





हम पत्थर हो कर जल पर चलना चाहें
पंख नहीं फिर भी पल भर उड़ना चाहें

हम चाहें मरना घबरा कर जीवन से
आये जो मौत तो उस से भागना चाहें

जल कर उड़ने का साहस है कहाँ हम में
मेघों के सीने से पर झरना चाहें

अपनी आदत से हम विवश हुए ऐसे
घर जाकर दीवारों से लड़ना चाहें

लोग निकल आये सड़कों पर पहिन के धूप
अंधियारों में फिर भी कहिं छुपना चाहें

थे जीवित जब तक दूर रहे हम से सब
रो रो के अब हम से क्यों मिलना चाहें

ध्रुव तारा तक 'भानु' निकलने को आया
दीपक लौ में पतंगे अब जलना चाहें





अपनी हर इक बात को जानता हूँ मैं
फिर भी अपने आप को काटता हूँ मैं

आने वाली साँस को देखता हूँ मैं
जाने वाली साँस को सोचता हूँ मैं

इक इक कंकर झील में फैंकता हूँ मैं
अपनी ही परिधियों में फैलता हूँ मैं

शतियाँ बीतीं थार को ताकता हूँ मैं
अंगुलियों से मील को नापता हूँ मैं

तेरी हर इक चाल पहिचानता हूँ मैं
अन्दर ही अन्दर यों खौलता हूँ मैं

पेड़ों की हर शाख से पूछता हूँ मैं
बोलो, घर से दूर क्यों भागता हूँ मैं

अगनी हूँ चिंगारी सा बिखरता हूँ मैं
आज कल मगर धूप से चमकता हूँ मैं



जिस दिन मन के देवता जल गये
तन से सारे कम्बल निकल गये

क्षुब्ध हुए सब विचार योवन में !
अब समझो दिन आप के ढल गये

अब मेरा मुँह आप न देखेंगे
अच्छा हुआ कि सब ख़तरे टल गये

अब आया है ऋतु जाने के बाद
अब तो मेरे सब फूल फल गये

इधर ही सब रहे मौत से डर कर
जो गये सूक्ष्म छिद्र से निकल गये

इतना प्रेम किया कि घबरा के वो
जाते हुए प्रेम यहीं उगल गये

कभी हिमगिरि में तो कभी रेत में
गल गये हम कभी, कभी जल गये

क्या विस्फोट हुआ कि 'मित्र' सभी
छोड़ मेरा शहर कब जंगल गये



वह देखता है सोचता है, जैसे तुम
दर्पण में कहीं खो गया है, जैसे तुम

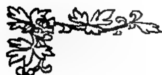
मैं कभी इधर डिगता हूँ तो कभी उधर
कान में कुछ तो कह चुका है, जैसे तुम

मैं नहीं हूँ वो जानता है तिस पर भी
कब से मुझे ही ढूँढता है, जैसे तुम

वह पुरुष जो याद रखता नहीं कभी
कुछ समझ कर ही भूलता है, जैसे तुम

वो सुर का ज्ञाता इक सुर भी न पा सका
अब क्यों शिखर में चीखता है, जैसे तुम





घाव अपना दिखाने से क्या होगा
अब आस्मॉ उठाने से क्या होगा

झील मन की हिलाने से नहीं हिलती
पाँव जल में जमाने से क्या होगा

फैलता है जंगलों पर नया जंगल
घास वन की जलाने से क्या होगा

एक इक पल कहानी से जुड़ा मेरा-
अब एक पृष्ठ जलाने से क्या होगा

झेल पाया न उस का एक शुष्क झौंका
धूल पीछे उड़ाने से क्या होगा

'भानु' पिछड़ते ही गये दिन से तुम
रात को फिर मिटाने से क्या होगा





मेरे मन की बातें, पेड़ों से कहना
जो कह न सको उन को, आँखों से कहना

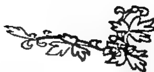
प्रीत के इक सुर से जीता हूँ मैं भी
मुझ में आकर मिल जाये, नदियों से कहना

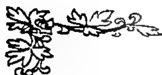
दिन के उजालों में भी खो जाने वाला
तुम्हीं में राहत ढूंढे, रातों से कहना

टूटा जाता है धूपों से कोमल मन
रूकना पल भर छत पर, मेघों से कहना

शैलों के पथ सारे बन्द हुए कब के
कैसे तुम तक पहुँचें, खोहों से कहना

अच्छा हम चलते हैं पर सुनते जाना
'भानु' तुम्हारा ही है, लोगों से कहना





ऊँची ऊँची दीवालों को ढहते देखा है हम ने
पेड़ों की गीली डालों को जलते देखा है हम ने

पहले तो आँख मिलाते हैं फिर क्यों आँख चुराते हैं
आँखों को ऐसे आपस में झूझते देखा है हम ने

लड़ते थे पहले लोगों से अब खुद ही से लड़ते हैं
इन का हर तन, धड़ या सिर में बटते देखा है हम ने

सपने में सूरज से ज़्यादा चमक जगाने वाले सुन
भीषण ज्वाला को सागर में डूबते देखा है हम ने

निकले थे जब भी जिन जिन रस्तों से यायावर से हम
उन रस्तों के हर पोधे को हँसते देखा है हम ने

घने अंधेरों और उजालों में तेरी हर हरकत को
नन्हे बच्चे समझ गये हैं कहते देखा है हम ने

प्रीत प्रणय वात्सल्य नेह की 'भानु' बात करे है क्या
हर पल हर कण का परिवर्तन चलते देखा है हम ने





गहराई में अन्तस की, जब उतरना चाहा और
इक इक व्यक्ति तिमिर से, प्रति पल में निकला और

है छायांचल सारी, अन्तस-रेत की लहरें
बैठा हूँ मैं जिस वृक्ष तले, है वो छाया और

तू भी है अर्थ उपासक मैं भी हूँ अर्थ उपासक
वो सर पे तेरे छाया, यहाँ उर की माया और

जितना मुझे कहना था, इक अंश न लिख पाया
मैंने तो कहा और मगर, तुम ने सुना और

जब हम ही न समझे तो क्या बतलाएँ तुम्हें
इक इक टीस के पीछे थी कोई पीड़ा और

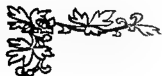
आती नहीं जो याद तो बढ़ जाती ये रातें
थम जाती अगर चाह तो, रुकना चाहता और

जो लौट के आना हो तो ये बताना हम को
जो लौट के जाना हो तो वो पल बताना और

ले के इक जन्म नया, दुनिया में करेंगे क्या
रक्त किसी नारी का वृथा बहेगा और

'भानुमित्र' जो आयेगा, प्रेम तो चाहेगा
बंजर हृदय में रहता अश्वमन क्या और





बाह्यान्तर बयारों से निश्चिंतित होना और
भीतर से कुछ लेकिन, आतंकित होना और

हँसता है फूल के संग, विस्मय नहिं कोई
कुम्हलाती हुई पाँखुरि से, पीड़ित होना और

छू लेती है बस्ती को, वन फूलों की सुगन्ध
उर से निकलते हुए, सुर का विस्तृत होना और

बन्द रहेगा कहाँ तक, ऊहापोह घेरों में
तुझ को ही मिटा देगा तेरा, शंकित होना और

पूर्णतया न समझ पाये, इस वय में भी हम
होना और किसी का भी, है आश्रित होना और

अपने प्रेम की तुलना करते फूलों से मगर
पाँखुरियों में तितली का, वासित होना और

है कब से प्रतिधारत उर से कुछ तो निकले
जो है नहिं उस के लिए आशान्वित होना और

वो अदृश्य रह जाते, यदि पलकें न मिलाते
'मित्र' अनखिली पाँखुरि से, आनन्दित होना और





बैठे हैं जो लोग मेरे सिरहाने
बोध न था आये है गेह जलाने

गिरती हैं बूँदें स्वच्छ दिगम्बर से
जाने अब किन के रंग बिखर जाने

द्वन्द छिड़े प्रतिपल गृहपालक में भी
याम - वाटिका सुमन अब लगे मुरझाने

जीते हैं हम जीवन जैसे हर पल
उन्हें लगे, दिन कितने कैसे बिताने

वचन तुम्हें कैसे दें जीवन भर का
कुछ प्रश्न अभी हम को भी सुलझाने

जानते नहीं हम भेद जनमने का
चले हैं मरन की यवनिका उठाने

थम जा अब तो न लगा चंदन के पेड़
कितने भुजंग और यहाँ पलवाने

कहते हो जीवन चक्र जिसे उस को
राका - निशा - उपरान्त कोई अभिज्ञाने

खुल ही जायेगी 'भानु' तेरी पुस्तक
जब सौंहेंगे तुझे जाने अनजाने





सूरज से निकला हुआ रंग है तू
जंगल में बिखरा हुआ रंग है तू

शैलों पर उभरा हुआ रंग है तू
झरनों से झरता हुआ रंग है तू

सुगन्ध से अब धरती भर जायेगी
पेड़ों से बरसा हुआ रंग है तू

मै खुद को डुबो दूँ रंग में तेरे
मूरत से नितरा हुआ रंग है तू

दुनिया का लावा रख लेना छुपा के
सीने में उबला हुआ रंग है तू

कैसे मै छू लूँ न बिखर जाए कहीं
सलवट में सिमटा हुआ रंग है तू

कैसे 'भानु' लगे तुझ पे रंग, कोई
रंग है न रंगा हुआ रंग है तू





चहरा मेरा लख चहरों के बीच
मैं हूँ मगर दो खम्भों के बीच

है घौंसला इक शाखों के बीच
शाखें हैं लेकिन झंझों के बीच

सोचा हमें जिसने वो ही आज
औंधा लेटा है राहों के बीच

हुए अन्त में गूँगे सब के सब
जिये जा रहे जो बहरों के बीच

मुझ को भी कोई ले जायेगा
खड़ा हुआ हूँ भावों के बीच

कोई मुझ को कहे कहानी जो
कभी घटी ना हो अपनों के बीच

विष का पड़े प्रभाव कहाँ अब
जिसे देखिये है साँपों के बीच

शाम हो गयी लौट चलो 'भानु'
काम तुम्हारा क्या तारों के बीच



कौन मेरी आँखों से उतरा है
जल पर जो मूरत सा उभरा है

खुद को भी पहचाने तो पहचान्
हर चहरे में तेरा चहरा है

छूना चाहें तो छूएँ कैसे
हाथों का उस के रंग हरा है

है गर्व उसे स्वनिर्मित घर पर
पंछी की अपनी परम्परा है

यहीं कहीं होगी उस की सुगन्ध
आँखों में सूखा सा गजरा है

लौट के आ जाती है मेरी पुकार
पत्थर में पानी अति गहरा है

वृक्ष तना टहनी पत्ती फल फूल
हर इक दूजे के लिये बिखरा है

स्वर्णिम किरनों के सूर्योदय का
'मित्र' निशा का सपन सुनहरा है



मैं घटा अम्बर हवा से बोलता नहीं
ध्यान से देखो मुझे मैं तीसरा नहीं

सरसरा कर पूछती है हर कड़ी छत की
आँख को भी आँख का क्यों आसरा नहीं

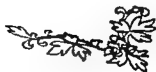
चार दीवारी में घुट कर क्या अलग रहना
बीच में तेरे मेरे जब दूसरा नहीं

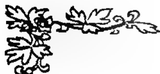
देखता है हर कोई बस रूप रंग ही
आदमी में आदमी को ढूँढ़ता नहीं

ठेस लगती टीस उठती आप की ताईं
आदमी हूँ मैं धरा का देवता नहीं

पच तत्वों के सदन चुनवा लिये तो क्या
तुम नहीं मैं नही तो तीसरा नहीं

'मित्र' हम मिल चुरा लें आज का ये दिन
ये समय फिर क्या पता कल आए या नहीं





याद की घटा को घटा सको तो कहो
मेरी तरह अगर छटपटा सको तो कहो

यूँ भी तो हमारे मकान हैं दूर दूर
और फिर ये खंदक पटा सको तो कहो

दुख नहीं जो विचार का ज़ोर है हम में
कष्ट शोर का है कटा सको तो कहो

द्वार तो खुला है हर घर का हर समय
हृदय को अगर खटखटा सको तो कहो

अब क्यों बाँटते हो रहा सहा ये गगन
ये हवा हर दिशा से हटा सको तो कहो

यह समय स्वेच्छा से जायेगा आयेगा
यदि उम्र को बढ़ा घटा सको तो कहो

फैल कर कहाँ आर पार अब जाओगे
'मित्र' खुद को यदि सिमटा सको तो कहो





कुछ अंक इस तरह उभरे
हृदय के सब घाव ठिठरे

उतर गये हृदय में गहरे
रेत में जैसे जल नितरे

उस ओर चाँदनी होगी
शुष्क नदी कौन पार करे

एक भी झौंका न था फिर
पौधों से फूल कब झरे

बोलते हैं पेड़ तक भी
तुम कहते हो रहो परे

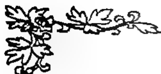
दी जिसे तिलांजलि हम ने
आ कर उसी गली में ठहरे

इस वैज्ञानिकता में सब
सोच सोच हो गये दुहरे

मृत्यु का नहीं भय हम को
जन्म से पहले हम ही मरे

'मित्र' देख उस के भी घाव
पीड़ से तेरी हैं गहरे





कर्म कुछ भी किया कीजिये
सर्ग से पर डरा कीजिये

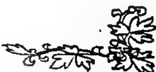
आदमी धूप भी छाँह भी
आदमी को सहा कीजिये

दोस्ती के लिए दोस्तो
दोस्ती न परखा कीजिये

हर क़दम नदियों में नया
नाव सा रास्ता कीजिये

घाव ये आप ही ने दिया
आप ही अब दवा कीजिये

फिर मिलेंगे 'मित्र' आप से
आज हम को क्षमा कीजिये





जिन अँखियन में नींद खड़ी है
बिस्तर को क्या उसे पड़ी है

खिड़की में जो मौन खड़ी है
इक यात्री से वह जकड़ी है

कातर नयनों के आँगन में
नटखट सी इक झील जड़ी है

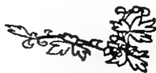
सोच रहा है मन का मरुवन
मेघों से कब बूँद झड़ी है

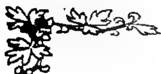
कौन बँधाये किस को धीरज
किस की बस्ती नहिं उजड़ी है

तीक्ष्ण बहुत है धार समय की
हर कर लेकिन बंधी पड़ी है

अलग अलग है सब के रस्ते
क्या है जो छाया पिछड़ी है

'भानुमित्र' की दृष्टि कभी भी
कहाँ डिगी और कब उखड़ी है





जब चाहे मेरे रस्तों से निकल
पहले मगर पूर्व ग्रहों से निकल

अति सुन्दर लगती है उसकी बात
फिर भी मकड़ी के जालों से निकल

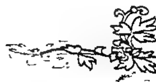
प्यास नहीं बुझती ओस कणों से
ऐ जल ! तू अब तो मेघों से निकल

इक बोधिवृक्ष है तेरे लिये भी
पहले अपनी इच्छाओं से निकल

पूजा होगी कब तक देवों की
मेरे जंगल की रातों से निकल

डूब रहा है अब सूरज तेरा
ऐ मन के भँवरे ! फूलों से निकल

बहुत रह चुके 'मित्र' की आँखों में
सोना है तो अब पलकों से निकल





नगर में जो बचे थे, उजाला करने वालों में
सम्मिलित हो गये वो, अँधेरा करने वालों में

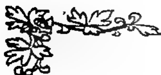
बात जो कर रहे थे कभी क्रांति दर्शन की
नाम आता है उन का, किनारा करने वालों में

संघर्ष की मशालें लिये निकले थे घर से
आ गये हैं मेज पर, समझौता करने वालों में

घाव को पौंछते हुए पता हत्यारे का पूछे
जब कि हम ही खड़े थे, निशाना करने वालों में

इच्छाएँ मौसमों की न पूछो मौसम भी तो अब
मिल गया है बिन झिझक धोखा करने वालों में





ज़िन्दगी को सोचता ही रहा जैसे बच्चा
मृत्यु को भी देखता ही रहा जैसे बच्चा

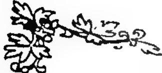
सौन्दर्य उन में छिपा हुआ है ये सोच के मैं
तितलियों को तोड़ता ही रहा जैसे बच्चा

जंगलों में भभकती आग को क्या समझ कर
चमक छूने मचलता ही रहा जैसे बच्चा

खुश्बू हवा में बसी है मगर मैं फूलों के
मुहानों को ढूँढ़ता ही रहा जैसे बच्चा

साँप था या कोई शैतान था कुछ पता नहीं
खिलौनों से खेलता ही रहा जैसे बच्चा





इस वक़्त ये दस्तक देता कौन है
कोई तो है, ज़रा देखना, कौन है

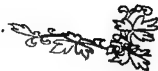
मेरे ही सामने आयी हिचकी तुझे
बता, वो कमबख़्त दूसरा कौन है

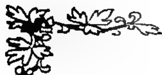
फूल तो फूल है शूल भी शूल है
हृदय अपना मगर, खोजता कौन है

जो हमेशा गुस्से में जिया मगर आज
आ के आँचल में रो पड़ा, कौन है

प्रेम से चाहते हो आधिपत्य तुम
इस पर भी कहते हो, अपना कौन है

तुम भले अँधेरों में छिपो दूर दूर
'भानुमित्र' से अब तक बचा कौन है





उस का है कितना जीना कुछ पता नहीं
वो गिरेगा, मगर उठेगा, रुकेगा नही

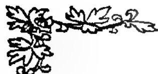
कैसे पढ़ पायेगा दूसरों के चहरे
अपना ही चहरा जिस ने कभी पढ़ा नहीं

हाथों में अंगारे जो लिये चलता है
फिर वो हथेली के फाले देखता नहीं

मुझ को तो जँच गयी सारी दुनिया मगर
पता नहीं अब तक मैं क्यों कर जचा नहीं

उस के जाने की ख़बर मिली थी देर से
कैसे शोक करूँ अख़बार पढ़ता नहीं





ठोस हेम को भी, पिघलते देर नहीं लगती
गर्म न कर जल को, उबलते देर नहीं लगती

उठा लिया ये सर शिखर तक देख ज़रा नीचे
पागल है जनमत, मचलते देर नहीं लगती

अपेक्षा तेरे उत्तर की यहाँ नहीं किसी को
तेरे कारनामे ! उछलते देर नहीं लगती

चन्दन शीशम के बने घर में रहता है मगर
काठ के घर में, आग जलते देर नहीं लगती

जो आदमी है तो आदमी में रक्त सा रह
पंख आदमी के, कुचलते देर नहीं लगती

पहले ही से वो भरे हैं घाव न देना और
बच्चों को घर से, निकलते देर नहीं लगती

राजनीति का खेल यों खेलेगा, 'भानु' कहाँ तक
चिकनी मिट्टी में, फिसलते देर नहीं लगती





दिन भर जूड़े में चाँदनी चमकाती है
इक फूल मुझे जाते हुए दे जाती है

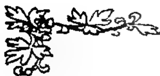
हर इक पल शब्द टपकते हैं नैनों से
निर्वाक दृष्टि भी क्या क्या कह जाती है

उन के आने, छूने, मिलने की शैली
जैसे पेड़ों से हवा छन कर आती है

होती नहीं किसी की होते हुए भी वो
कान में कह कर चुपचाप निकल जाती है

बच्चों से खेलते रहिये ज़्यादा से ज़्यादा
बच्चों से बिगड़ी हुई बात सुधर जाती है

हँस के जागा खेला और जिया हँस के
'भानुमित्र' देस चलें अब नींद आती है



झील का, तालाब का, या सीर सागर नीर का
है विरल इन से मगर, हर दृश्य गंगा तीर का

पास आ जाऊँगा, पहले मगर अच्छा तो हो
जो लगा है इस हृदय पर, घाव तेरे तीर का

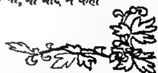
धूप से डरता अँधेरों में, खड़ा कब तक रहूँ
रास्ता देखूँ कहाँ तक आने वाली पीर का

पंख हैं फैले हुए आकाश के चारों तरफ़
पर नहीं मिलता ठिकाना, क्यूँ धरा के बीर का

आग मिट्टी जल पवन से बन गया मूरत सा मैं
अब कहीं आकाश, मिल जाये तुम्हारे क्षीर का

सँवर जाये स्वप्न में भी रश्मियों से तन मेरा
छू के मिट्टी गाँव की, जब आए झौंका हीर का

(यह ग़ज़ल सूचना केन्द्र, जोधपुर में 'ग़ालिब' के दो सौ वर्षीय *जन्मोत्सव सप्ताह दिनांक 21-12-97 से 27-12-97* तक चले कार्यक्रम में दिनांक 27-12-97 को तर्ही-मुशाइरे में पढ़ी गयी थी । तर्हा थी — "काग़ज़ी है पैरहन हर पैकरे - तस्वीर का ।" इस ग़ज़ल का अन्तिम शे'र पढ़ा नहीं गया था, जो बाद में कहा गया था)





सोचता हूँ मैं अब भी संभल जाऊँ
सीमा से तेरी बाहर निकल जाऊँ

अच्छा लगता है हर व्यक्ति पौ फटते
शाम तक शायद मैं भी बदल जाऊँ

बस्तियों के हृदय हो गये हैं ठण्डे
किसी लावे से अब तो पिघल जाऊँ

आ नहीं सकते गगन से नीचे तुम
समन्दर से मैं फिर क्यों उछल जाऊँ

सोच बचपन की होती है निराली
रेत की भाँति हाथों से फिसल जाऊँ

बस इसी में बीत गयी वय मित्रों !
कि घर उन के, आज जाऊँ कल जाऊँ

देख कर मुझ को मुस्काते रहें लोग
हँसता हुआ मैं जग से जिस पल जाऊँ



झील का, तालाब का, या सीर सागर नीर का
है विरल इन से मगर, हर दृश्य गंगा तीर का

पास आ जाऊँगा, पहले मगर अच्छा तो हो
जो लगा है इस हृदय पर, घाव तेरे तीर का

धूप से डरता अँधेरों में, खड़ा कब तक रहूँ
रास्ता देखूँ कहाँ तक आने वाली पीर का

पंख हैं फैले हुए आकाश के चारों तरफ़
पर नहीं मिलता ठिकाना, क्यूँ धरा के बीर का

आग मिट्टी जल पवन से बन गया मूरत सा मैं
अब कहीं आकाश, मिल जाये तुम्हारे क्षीर का

सँवर जाये स्वप्न में भी रश्मियों से तन मेरा
छू के मिट्टी गाँव की, जब आए झौंका हीर का

(यह ग़ज़ल सूचना केन्द्र, जोधपुर में 'ग़ालिब' के दो सौ वर्षीय जन्मोत्सव सप्ताह दिनांक 21-12-97 से 27-12-97 तक चले कार्यक्रम में दिनांक 27-12-97 को तर्ही-मुशाइरे में पढ़ी गयी थी। तर्ह थी — "काग़ज़ी है पैरहन हर पैकरे - तस्वीर का।" इस ग़ज़ल का अन्तिम शे'र पढ़ा नहीं गया था, जो बाद में कहा गया था)



बारिशों की धार से पत्थर डर गये
डालियों पर सोये सोये सर डर गये

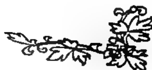
नगर पहुँचा गाँव में गाँव भी हुआ नगर
जंगलों में इस ख़बर से घर डर गये

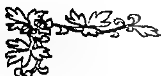
समन्दर में एक हल्की लहर क्या चली
बालकों के नन्हे-नन्हे से घर डर गये

बदलने वाली हैं नदियाँ दिशाएँ अपनी
सारसों के ताल और पोखर डर गये

दोस्ती में दो नहीं, है गिनती एक तक
दोस्ती में जो बट गये सर डर गये

उम्र भर डरता रहा 'भानुमित्र' उन से
अन्तिम पल मुझ में क्या देख कर डर गये





हर कोई कहता रहा भ्राता मुझे
विषमय घावों ने कब सराहा मुझे

मै था संग तेरे था तेरा ये अहम
था मेरे तू निकट ये भ्रम था मुझे

मुक्त हुआ जब भी विचार समूह से
सन्देह के हर तार ने बाँधा मुझे

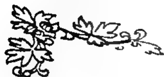
आत्म आहें तक निकल आयीं बाहर
पुष्प गंध ने यहाँ तक खींचा मुझे

मैं इतना कठोर हृदय भी था कहाँ
घायल शिशु ने फड़फड़ा डाला मुझे

मित्रगण दे गये प्रेम की वेदना
विस्मृति औषध भूल गये देना मुझे

बहुत सँवार लिया 'भानुमित्र' तुम ने
झरझरित मुकेशों ने निखारा मुझे





तन की हजार नदियों का, करें क्या
मन है उदास गलियों का, करें क्या

जाती हुई लहरियो,उन से यह कहना
निर्धन है वृक्ष चिड़ियों का, करें क्या

जुड़ा हुआ है वन से उर मेरा क्यों
होगा खिंचाव कलियों का, करें क्या

अभी तो प्रेम के दाने पके कहाँ
तिस पर क्रोध बिजलियों का,करें क्या

जब उर जला तो सारा जग ध्वस्त हुआ
अब इन जली बस्तियों का, करें क्या

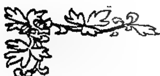
हृदय के भाव प्रकट न कर पाए हम
इन पाषाण पुतलियों का, करें क्या

सारे प्रयास बन्धन के व्यर्थ गये
मन-पथ चंचल पुलियों का, करें क्या

आह नहीं ,अर्थ नहीं ,और न हो लय
ऐसी शब्दावलियों का, करें क्या

है क्यों अधीर मन 'भानुमित्र' दिन रात
अग़ज़ल ऊंचाईयों का, करें क्या





जब तक बजे न उर के तार, क्या करें
है निरर्थक हरिक झंकार, क्या करें

क्या करें बरखा नहीं, आँगन में मेरे
है रेत में नाव बिन धार, क्या करें

ग्रस लिया उर राहू ने अब दिवाकर का
फैलता जा रहा अन्धार, क्या करें

गगन शोभा रख पायेगा अब किस तरह
धरती पर गिरा पंख पसार, क्या करें

खो गयी है आँचलों की लाज लज्जा
खूँटियों में टंगा श्रृंगार, क्या करें

धमनियों में धारें मिलीं आँसुओं की
है रिक्त अब रक्त संचार, क्या करें

हम ने झेले उपहास भी, परिहास भी
अब आये हैं 'मित्र' उपहार, क्या करें



आप अपने में हूँ तो समन्दर पर
ढूँढता हूँ युग युगों से अभ्यन्तर

चौड़ाइयों ने मुझ को है समेटा
गहराइयाँ भी, सिमट सकतीं अगर

सो गयीं परछाइयाँ आत्मा की
सूरज कोई आए अन्दर, उतर कर

है कष्ट दुख सब विचारों के दिये
आनन्द वेदना भी, है प्रीति कर

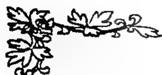
बादलों को मात्र करना था प्रेषित
मिल गयी हर नदी मुझ में नाद भर

अधूरे सम्वाद तक हर सभा का
होता है समापन सर व धड़ बाँट कर

लाये कहाँ से कुछ नया दें तुझे
कहते हैं नूतन पुराने अर्थ पर

अपेक्षा या उपेक्षा है 'भानु' दूर
आलोचकों की दृष्टि, माया मछन्दर





वृक्ष झूमते हैं हवाओं से मिल कर
आज हम भी खुश हैं आलमों से मिल कर

कुछ मुस्कुराहटें घर ले के जाइये
गा रहे है पंछी घौसलों से मिल कर

क्या नहीं मिला है धड़कनों से तेरी
हर गन्ध बनी है श्वासों से मिल कर

देखा नहीं कभी, सौन्दर्य अछूता
बिजलियाँ मिली तो बादलों से मिल कर

पाषाण हृदय में मैन भी कहीं है
आज जान पाये सखाओं से मिल कर

उस पे कर भरोसा और विश्वास रख
वो मिटा है तेरी मिट्टियों से मिल कर

उठाते हैं जाने क्यों हाथ हवा में
थक जाते हैं जब पत्थरों से मिल कर

'भानुमित्र' है सब के अन्त में फिर भी
शे'र कहे हैं आत्माओं से मिल कर



आँधियों का अधिदमन,है अभी तक आँख में
घोसलों का वो पतन, है अभी तक आँख में

सोच में डूबा हुआ, पलक तक अनजान थी
एक तिनके की चुभन,है अभी तक आँख में

नदियों से पूछ कर घाटियों में जो गिरा
लुढ़कता यह मौन तन,है अभी तक आँख में

किसके वश में था कहाँ सामना उन का भला
पर पिता का बालपन, है अभी तक आँख में

पास मेरे बैठना_नींद में भी जागना
पीठ पर उस की थपन,है अभी तक आँख में

माम सीमा पर खड़ी ओढ़नी की ओट में
सिसकता सा आत्मन,है अभी तक आँख में

शाम से हर शाम तक 'मित्र' से हँसते रहें
ये इक जीवन दर्शन, है अभी तक आँख में



रहोगे दूर तो दूरियाँ भी बढ़ जायेंगी
विषैले शूल की डालियाँ भी बढ़ जायेंगी

उषा की किरन में छायेंगी जब भी निहारें
जकड़ती साँस में सिसकियाँ भी बढ़ जायेंगी

देखते देखते ये तारे वय चुक जायेंगे
थकेंगे नैन, उदासियाँ भी बढ़ जायेंगी

सूना होगा कबूतरों का आँगन भी अब
बुझी बुझी बस्तियाँ भी बढ़ जायेंगी

क्या होगा अन्तर रुझान हो कि न हो
मगर समझने की चुप्पियाँ भी बढ़ जायेंगी

गली से निकलोगे तो रूप मिल जायेगा
अधीर धूप की दृष्टियाँ भी बढ़ जायेंगी

अभी अकेले ही बयार से मिल देखो
अनीले रूप की रीतियाँ भी बढ़ जायेंगी

अकेले जी कर अन्धेरों से खेलना होगा
जियोगे साथ, कहानियाँ भी बढ़ जायेंगी

'मित्र' पढ़ोगे ख़ुद को तम के घेरों में
किसी ग़ज़ल की पंक्तियाँ भी बढ़ जायेंगी





प्रेम का अभाव था सह गया कोई
सूख कर पंजर सा रह गया कोई

स्मृतियाँ उछाल भर.छा गयीं जहाँ
शूलवत शरीर में बह गया कोई

देखता रहा तुझे शीश महल सा
कल्पना बिखरी तो ढह गया कोई

मैं तेरा ही हूँ कहता रहा ये मगर
तू नहीं किसी का है कह गया कोई

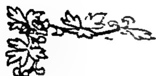
था न दुख कि लुट गया सह लिया उसे
मगर छोड़ कर गृह कलह गया कोई

देवता न था कभी सिन्दूर की मगर
पर्त पर पर्त में तह गया कोई

ठीक था पशु मगर पीठ को मेरी
आदमी के नाम से दह गया कोई

आस्तिक या नास्तिक सब चले गये
अब गये तुरन्त ही दह गया कोई

'भानु' कौन आयेगा
जो पहुँच गया, वहीं रह



है यहाँ धूप अर छाँव भी है यहीं
रह गये मगर हम बीच ही में कहीं

हम कभी थे चले इक हँसी को लिये
खो गयी वो मगर रास्तों में कहीं

समर में जो चले थे मेरे साथ साथ
वे गये लौट बस रह गया मैं वहीं

चन्द्र का क्या कहें सूर्य भी लज्जावान
इक दीप के लिए इक किरन भी नहीं

घूमते ही रहे अनवरत चक्र से
जब खुली आँख तो थे वहीं के वहीं

ताकती सी रह गयी प्रीत की कली
इक भ्रूण के लिये तितलियाँ कम रहीं

'मित्र' कुछ तो रुको कहूँगा सब कुछ
एक पल के लिए समय ठहरा नहीं



खुली खिड़की से जो लटक जाती है
हवाओं से वो ही दहक जाती है

प्रीत उस की जब है धरोहर मेरी
अगर देता हूँ तो बहक जाती है

याद की पतंग छुड़ा दी कितनी बार
मेरे पेड़ में मगर अटक जाती है

मेरी इक दिन की पूछो न उलझन का
कथा कहते हुए रात भी थक जाती है

वह अधपकी है उसे तपने तो दो
धूप से मिल कर अभी पक जाती है

मित्रता को भी परखने का मतलब
वह हरहराती हुई लचक जाती है

बिखर जाती है जो दूर मैं जाऊँ
निकट जाता हूँ तो चमक जाती है

दिगम्बर से वह विशाल क्या होगी
अन्दर आती है तो भटक जाती है

यत्न करता हूँ ये बन्द भी हो जाय
पर ये धड़कन है धड़क जाती है

इक किरन जगा दी मैं ने भी ग़ज़ल में
'मित्र' देखिये अब कहाँ तक जाती है



हँसते हँसते स्वयं ही रो गया
जाते जाते आँखें भिगो गया

कहते कहते लगती थी झपकी
मगर वह भी जाने कब सो गया

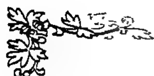
सच्ची घटना जिस से कही, वही
नंगे पाँव में काँटे चुभो गया

अर्थ हीन मैं भी डोलता रहा
घर गया तो घर में भी खो गया

था ही नहीं और ठिकाना उस को
आया था न इधर किधर को गया

दिया निमन्त्रण मैं ने जिसे, वही
हाथों में मेरे पत्थर पिरो गया

जीने का स्वर 'मित्र' समझ लिया
मरने का था जो विचार वो गया



खुली खिड़की से जो लटक जाती है
हवाओं से वो ही दहक जाती है

प्रीत उस की जब है धरोहर मेरी
अगर देता हूँ तो बहक जाती है

याद की पतंग छुड़ा दी कितनी बार
मेरे पेड़ में मगर अटक जाती है

मेरी इक दिन की पूछो न उलझन का
कथा कहते हुए रात भी थक जाती है

वह अधपकी है उसे तपने तो दो
धूप से मिल कर अभी पक जाती है

मित्रता को भी परखने का मतलब
वह हरहराती हुई लचक जाती है

बिखर जाती है जो दूर मैं जाऊँ
निकट जाता हूँ तो चमक जाती है

दिगम्बर से वह विशाल क्या होगी
अन्दर आती है तो भटक जाती है

यत्न करता हूँ ये बन्द भी हो जाय
पर ये धड़कन है धड़क जाती है

इक किरन जगा दी मैं ने भी ग़ज़ल में
'मित्र' देखिये अब कहाँ तक जाती है





जो मिला मुझे उसे चूमता चला गया
खो गया अगर कहीं सोचता चला गया

नैन की उदासियाँ जब कभी छलक पड़ीं
पाँखियों के झुण्ड में खेलता चला गया

कौन था कहाँ का था धूप को मेरी मगर
देखते ही देखते रौंदता चला गया

तीरथों की चाह में रास्तों की भीड़ में
खोजता रहा मगर उलझता चला गया

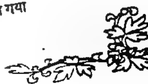
पेड़ डाल पात फल जब लगे उदास से
लिपट कर हरेक से पूछता चला गया

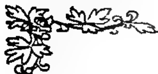
आँख थी जहाँ जहाँ याद की वहाँ वहाँ
प्रीत की कहानियाँ छोड़ता चला गया

नाम की तलाश में रो रहा है आदमी
भीड़ जब कहीं दिखी दौड़ता चला गया

हूँ इसी की खोज में ध्यान में रमा रहा
मौन था मगर मुझे छेड़ता चला गया

'भानु' जब प्रकट हुआ हर तम भयभीत सा
रश्मियों की चोट से बिखरता चला गया





थके पाँव पर बढ़ता जा रहा है
अभी इक सितारा चमका हुआ है

जो राहों में था घर आँख में था
पहुँचा जो घर में तो घर काटता है

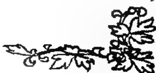
मिला खोल उस को भी पंछियों का
मगर क्या करे वो इक पर कटा है

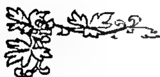
मेरे हाथ तेरे लिए काट फेंके
तभी झालियों से तू झाँकता है

चिता पर चिता कोई दाह बैठा
धुएँ ही धुएँ का अब सामना है

झुण्ड पाँखियों का नभ में उड़ गया
हवा को हवा को अब थामना है

'मित्र' आँख पर चादर डालता है
ये उस की विवशता कि शिष्टता है





अपने साथ मुझे बुलाता है कौन
मेरे निकट मेरे अलावा है कौन

सन्ध्या से ये बुझा बुझा सा है कौन
मेरे निकट मेरे अलावा है कौन

देखा नहीं उसे कभी है वो कौन
दे थपकियाँ मुझे सुलाता है कौन

होता जाता हूँ हवा से भी हलका
मेरे भीतर से निकलता है कौन

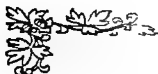
मैं तो छाया से जल रहा हूँ मगर
जल के भीतर भी दहकता है कौन

अब के शीशे से बनाया है सदन
देखें अब इसे गिराता है कौन

रक्खूँ पाँव कहाँ बताओ अब तुम्हीं
घर पर यह लावा उगलता है कौन

अपने कमरे की सिस्की 'मित्र' सुन
तेरी ही कहानी सुनाता है कौन





कल शाम की ये बात है आकर किसी ने ये कहा
पंकज मेरा मुरझा गया फिर भी भ्रमर गाता गया

कैसी अनोखी रात थी लेकिन विरोधी बात थी
धरती यहाँ सोती रही अम्बर मगर जगता रहा

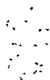
कुछ तो हुआ होगा कभी मन में लिये अगनी सभी
इक चाँदनी के वास्ते सूरज सदा जलता रहा

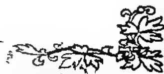
कैसे पता लगता मुझे वो था मेरा अथवा नहीं
जब भी मिला हँसता मिला अर जब गया हँसता गया

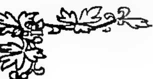
उस की शिकायत क्या करें जब भी मिली फ़ुरसत हमें
उस ने कहा मैं ने सुना मैंने कहा उस ने सुना

पूरब दिशा की बादली, दक्खन दिशा से जा मिली
अब देखना तूफ़ान ये किस को उड़ा ले जायेगा

होंगे यहाँ हम फिर कभी सब से मिलेंगे पर अभी
इस सभा से लेता विदा 'भानु' ग़ज़ल कहता हुआ







भीगती रहीं धूप से दीवारें
चाँदनी को अब तो नीचे बुला लें

ये नदी ये बादल ये आँखों का जल
बदलता है पानी अनगिनत चालें

इस से पहले कि शीशे का घर देखें
अपने सर पे इक इक पत्थर उछालें

ये कमरा न सूना रहे अपने बाद
स्मृति के लिए बस गमला उगा लें

संशयहीन चलते हुए सब के साथ
हो सके तो उसे दुखों से बचा लें

ऋतु की धार से बच सकता है कौन
आइये पेड़ों की तरह सिर झुका लें

है घिन हमें को औपचारिकता से
मगर ये दिखावा किस तरह टालें





कल मेरा मैं चबूतरे पर बैठा होगा
सोचता हूं वह चहरा भी कैसा होगा

किसी की आँख में स्वप्न बिखरे देख कर
दिन भर वो धूप की नसें समझाता होगा

आज तक हुआ नहीं कुछ भला उस के हाथों
जोड़ कर ये हिसाब बहुत पछताता होगा

काँपते हाथ से पकड़ते हुए इक लाठी
दूसरा हाथ कोई टेक ढूँढता होगा

तू समझेगा वो ईश्वर को याद करता है
मगर वो इक इक पल मौत माँगता होगा

सम्मान तो उसे सभी दे देंगे झुक कर
पास उस के कोई मगर न ठहरता होगा

जब कभी कोई शव, आँखों से निकला तो
आगत पलों से अनवरत घबराया होगा

'मित्र' उस की कहानियाँ अब कौन लिखेगा
जब न पहला न दूसरा न तीसरा होगा



अपने कमरे में जब वो अकेला होगा
मात्र स्मृतियों का एक झमेला होगा

झुँझलाया होगा सोच के मुझे ख़ुद ही
क्रोध में जब अपना घाव उकेला होगा

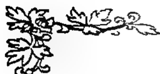
क्यों छूटता नहीं उस के मस्तिष्क से मैं
कब तक वन में अपना तन ठेला होगा

बैठे बैठे जी उचट गया क्यों उसका
मकु आज गाँव में कोई मेला होगा

फिर झुक गयी होगी धरती पर फूलों सी
हवा का जब कोई झौंका झेला होगा

मैं न रहूँगा यह कह तो दिया था मगर
आज भी उस के गालों पर रेला होगा

घर के कौने तक 'भानुमित्र' चारों ओर
मकड़ी के जालों का बस मेला होगा



शब्द के तार बजाओ, प्रियम्वद मेरे
नयन से शे'र सुनाओ, प्रियम्वद मेरे

शुष्क है थार मेरा आँसुओं के लिये
धरा से धार बहाओ, प्रियम्वद मेरे

झुका जाता हूँ फूलों के बोझ से मैं
तनिक तुम शाख़ हिलाओ, प्रियम्वद मेरे

फड़कती है भुजा मेरी कितने युगों से
निकल के सर्ग से आओ, प्रितम्वद मेरे

न लो तुम और परीक्षा ग़ज़ल की मेरी
जले को न फिर जलाओ, प्रियम्वद मेरे

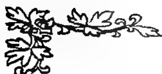
बयारों से सन्देश मैं सुनूँगा कब तक
कि साक्षात चले आओ, प्रियम्वद मेरे

सुख समझ के दुख को जी चुका हूँ अब तो
और ना पीर बढ़ाओ, प्रियम्वद मेरे

स्मृतियों का सोम बहुत पी लिया तेरा
ये मद्य और न बरसाओ, प्रियम्वद मेरे

अकेला ही 'भानु' जिया जंगलों जैसा
अकेला छोड़ न जाओ, प्रियम्वद मेरे





विष व्याप्त हुआ किस तरह मनों में
खड़े हैं ले के पत्थर हम हाथों में

कौन सा बिन्दु था जिस पर बिछड़ गये
तुम मुड़े नगर को, मैं गया वनों में

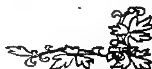
कैसे फलें पेड़ हृदय के हमारे
धोखों की लगी है दीमक जड़ों में

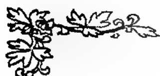
नगर की आग से जायेंगे हम कहाँ
घुट रहे हैं प्राण जंगली धुँओं में

सैकड़ों युगों का है ये श्रम हमारा
मिटा दोगे क्या इसे दो पलों में

समझने लगे हैं आदमी की व्यथा
फड़फड़ाते रहे हम अन्धे कुओं में

लाया कुछ नही तो देगा कहाँ से
'मित्र' मिल जायेगा रेत के कणों में





भोर हुयी भैरव राग सुनाया जाये
सोया है सूरज उसे जगाया जाये

अन्धेरों में फिर पुँज लगाया जाये
हर पथ को एक प्रकाश दिखाया जाये

रेशा रेशा जीवन है उलझावों में
सुलझावों का इक फूल उगाया जाये

स्वर्णिम किरणों का है कौन ये अवरोधक
देख उसे भी, छत पर जो छाया जाये

धूप कड़ी है ये कह कर छूटें कैसे
कन्धों का सूरज सिर पे उठाया जाये

समयोग की भाषा पर लौट पड़ेंगे सब
लोग वही समय वही जो बताया जाये

कुछ परिवर्तन हो तो वो भी हम कर लें
जो विचार बना है उसे बढ़ाया जाये

रुक भी जाये शायद युद्ध ये भीषण
एक कबूतर कल्पित ही उड़ाया जाये

साँझ ढले इधर कभी आये 'मित्र' कोई
आशा का एक अलाव जगाया जाये





इक उद्‌गार सुना प्रीत भरा और चला
एक शब्द भी, मुझसे न कहा और चला

आया था वह पुरवाई सा और चला
इक फूल जो बस महका ही था और चला

आया जो पीछे मेरी परछाईं के
परछाईं के मिटते ही मुड़ा और चला

समझा ही नहीं इन पेड़ों की प्यासों को
अन्धेरों को तिरसाने दिया और चला

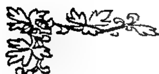
सुन संगीत वही बाँसों के झुरमुट से
वो सोया था मगर चौंक उठा और चला

एक दिया था जो बिफरता सा देखा उसने
तीव्र गत्य से वह और चला और चला

थे हर लौ की तरह सत्य मेरे पर उस का
झूठ था जो वो ही सत्य हुआ और चला

अंगार भरा हर तरकस है 'भानु' अगर
है साहस तुझ में तीर उठा और चला





धूप का टुकड़ा आ कर पूछे खिड़की पर
अन्धेरों में क्या क्या बीता बाती पर

डूब रहा है फूलों का मन डालों में
मेरे होते तोड़ दिये हैं तितली पर

खोज निशा भर तड़प तड़प कर ये सूरज
टूटा भी तो कौंपल की अंगड़ाई पर

हर बसन्त की करता है मौसम चोरी
लेकिन सारा अपराध गया माली पर

खेल किये हैं जाने क्या क्या रातों में
फेंक रहे हैं पत्थर अब इक पगली पर

चोट है छोटी, घबरा गया है, पर मानव
घाव लगे हैं कितने गहरे धरती पर

कोरे रंगों के कागद की नावों से
कब तक ठहरेगा सागर के पानी पर

'भानुमित्र' ज्ञात नहीं है तेरा ठिकाना
रोज़ लिखेगा नाम, तुम्हारा पाती पर





कोई आप स्वयं से, ढूँढ़ेगा कब तक
सागर की लहरों को, तोड़ेगा कब तक

दूर बहुत निकल गया, भटकेगा कब तक
डूब रहा है सूरज, लौटेगा कब तक

प्रयोग करते करते छूट गया जीवन
शवमय निष्कर्षों से, निकलेगा कब तक

पल प्रतिपल आकार बदलती छाया से
अपनी काया को भी, नापेगा कब तक

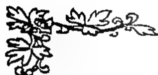
निर्णय गये बदलते परिणामों के संग
निराधार लक्ष्यों को, पकड़ेगा कब तक

तू ने ही निर्माण किया है कल का, फिर
सोचेगा कब तक पछतायेगा कब तक

अक्सर 'उस' का अनुगमन करता है तू
अपना ही अस्तित्व, बटायेगा कब तक

होता है विस्फोट 'मित्र' हो जाने दे
उद्‌गारों को अपने, कुचलेगा कब तक





किस दिशा से हो गया, फिर हवा का आगमन
छोड़ अपनी परिधियाँ, ढूंढ़ता हूँ आयतन

कोठरी सा है ये घड़ और सर है इक भवन
आदमी का अब क्या, हो गया इतना पतन

खोजता हूँ मैं तुम्हें खोजना है पर विकट
हैं इधर तो लाख जन, पर मेरा है एक मन

इस धरा का किस तरह और बटवारा रुके
मनुष्यों को देखिये, हो गये हैं आव्रजन

नाम मेरा है लिखा पेड़ के हर पात पर
याद आये जब कभी, देख लेना आप्वमन

चाहने वाले मुझे सब हिमाला चल दिये
भुगतना होगा मुझे, क्या दुबारा तातपन

तू परबतों में ठड़े और रेत मन हूँ मैं
किस तरह होगा मिलन, हेम तू मैं आतपन





जिस दिन विवशों के मन्दिर खुल जायेंगे
झंझा से लड़ने को सब तुल जायेंगे

कब तक गुम्बद पर ये रंग टिक पायेंगे
जब इक बूँद गिरेगी सब धुल जायेंगे

पच तत्व का कब तक हम अभिमान करें
जल संग ये सब मिट्टी में घुल जायेंगे

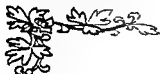
क्या होगा यदि हो जाये ख़त्म ये लोहा
पत्थर फिर भी हम से अनतुल जायेंगे

क्यों न कहा अर्जुन को जब उपदेश दिया
जो न मरेंगे वे शोकाकुल जायेंगे

इक दूजे के इस मंच पे हैं शत्रु सभी
जो हारेंगे वे सब मिल जुल जायेंगे

आज अजाने से बैठे हैं दूर सभी
धीरे धीरे 'भानुमित्र' खुल जायेंगे





मैं इक गमला ही सही सजने तो दिया होता
कुश का तिनका ही सही उगने तो दिया होता

सीने में है जो भरा कहने तो दिया होता
कह कर जीने के लिये मरने तो दिया होता

सड़कों को मैं ने अभी छू कर भी नहिं देखा
घुटनों के बल ही सही चलने तो दिया होता

दरवाज़े मेरे सभी खुले हुए बाहर से
भीतर से इक रस्ता खुलने तो दिया होता

तुम से बच कर मैं यहाँ जीऊँगा कितने दिन
एक पतंगा हूँ तेरा जलने तो दिया होता

रह कर सागर में जला पत्थर का हुआ शरीर
कुछ पल ही जाते ठहर, गलने तो दिया होता

धरती सा है तन तेरा पथ लाखों हैं तुझ में
एक छिद्र से कोई मुझे रिसने तो दिया होता

बाँधा है किस ने मुझे होती क्यों नहीं निशा
रुक भी जाता वो समर ढलने तो दिया होता





भला खुद से होऊँ मैं कब तक हताहत
होते रहें लोग चाहे अब असहमत

मेरे उर सदन को समझे कौन जिस की
दीवार हूँ मैं ही और मैं ही हूँ छत

सहानुभूति के अतिरिक्त वो क्या करते
हर साँस से होता रहा मैं ही आहत

हम को पता है मृत्यु है तीर्थ अन्तिम
हँसते हुए बढ़ते रहे हम अनवरत

चलिये सभा भवन तक हो आएँ हम भी
आ गये होंगे वहाँ मानस, सम्भवत्

आप अपने को कभी माँझा ही नहीं
जमती गयी रेत की, परतों पर परत

छल किया ठस से पता भी नहीं ठस को
कोसता है सच मुझे हृदय शत प्रतिशत

बैठ कर हम आवागमन के मंच पर
खेलते जा रहे हैं रम्मत पे रम्मत

सामने उन के 'मित्र' कब तक टिकेगा
है सिन्धु तो इक मगर लहरें अनगिनत





डूबा रहा समन्दर में महीनों मेरा शरीर
मिट्टियों में खेलता है अब, कंचन जैसा शरीर

भूला नहीं मैं अभी तक स्वाद पहली सेव का
समय के एक ही पल ने बदल तक डाला शरीर

माँग कर निज खण्डित किया अंश आधा और का
संग मेरे ही जल गया जो रहा साझा शरीर

धूप की थी कृपा आ गयी खिड़की से चुपचाप
ताप तपता रहा शीत में डूबा हुआ शरीर

करता रहा जितना जतन साधने में तन को मैं
व्यस्त इतना होता गया न संभाल पाया शरीर

सम्मान करने की कला है निराली अहम की
सामने देखा जब तुझे हँस के झुकाया शरीर

शे'र हम ने हैं कहे रास्ते भी हैं साक्षी
अवकाश हो आकाश में कभी पढ़ लेना शरीर

'मित्र' कोई दुख न चिन्ता न खान पान में कमी
था न तू बीमार फिर क्यों गिर गया तेरा शरीर





नयी सी इक डगर कहीं से पा गया
चला था जहाँ से वहीं फिर आ गया

तुम्हीं को हमेशा दिखाता रहा घर
वह पागी अपना घर भूल सा गया

निकल कर अपने घर से जायेगा किधर
किसी स्वप्न से क्या बहुत घबरा गया

भुलाना किसी को सहज भी तो नहीं
घाव जो भर गया फिर उखाड़ा गया

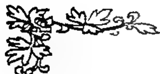
गरल का घूँट था वह प्रेम तुम्हारा
न छोड़ा ही गया ना उतारा गया

मनों में धूम्र के अम्बार उठ रहे
आत्मा पर कहीं अंधेरा छा गया

बिजलियाँ रात भर चमकती रहीं मगर
वो जाते हुए बस ओस छिड़क गया

ये नयन ढूँढते हैं गुहा शिखा में
'मित्र' जहाँ दुख तेरा छुपाया गया





फिर आयेंगे मिलने तुम से
हैं प्रश्न कई करने तुम से

पुँज नयन में उर में चिन्तन
अब कुछ शब्द समझने तुम से

वृक्ष रहो कुछ तो हरे हरे
टूटे पात जोड़ने तुम से

तुम ने बनाया था जिस घर को
प्रतिकार लिये कितने तुम से

पिघल न जाना हेम अभी तुम
अंग सभी ये गलने तुम से

सत्य सत्य अब क्या चिल्लाना
सब बिछड़ गये अपने तुम से

मृत्यु तनिक सम्मुख तो आओ
मैं पत्थर भी हटने तुम से

'मित्र' ग्रहण कर शक्ति कुछ और
संघर्ष कई करने तुम से





इक सपना वह भी संजोने वाला है
क्या हुआ अगर पत्थर ढोने वाला है

दिन में भी जला के रक्खो अब एक दिया
इस नगर में अंधेरा होने वाला है

कवच सुरक्षा का वह बना लिया कि जो
अस्तित्व स्वयं ही खोने वाला है

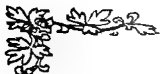
तेरे आश्वासन स्वप्नों से हो के दुखी
आँसुओं से, ईश्वर धोने वाला है

उस का सम्मान भंग कर साथ उसी के
अपनी ही भाषा में रोने वाला है

क्यों दिये थे उसको गुलाब ढेरों में
वह काँटे से फूल पिरोने वाला है

'भानुमित्र' न फिर झपक सके पलक तेरी
अपनेपन का शूल चुभोने वाला है





जगी जगी सी नींद में कहानियाँ सुना गया
कभी मुझे हँसा गया कभी मुझे रुला गया

कभी दिया जला गया कभी दिया बुझा गया
कभी मुझे हँसा गया कभी मुझे रुला गया

कहीं नहीं था रास्ता न तीर्थ ही मिला कहीं
मगर ये साथ कौन था कुटुम्ब सा बना गया

कई युगों से आ गया ध्यान सा मुझे अभी
तपी तपी सी रेत में स्वगन्ध जब मिला गया

दसों दिशा के बोझ से प्रभात था डरा हुआ
अरूण मगर रश्मि से कई कुसुम खिला गया

तिमिर को भेदता हुआ निशा को तोड़ता हुआ
प्यास जो लगी मुझे तो ओस ही पिला गया

पहाड़ियाँ तो सो रहीं, थीं हेम से ढकी ढकी
'भानु' जब उदय हुआ तो हेम ही गला गया





जीतने से बड़ी न कुछ समस्या है
हार जाइये फिर मजा ही मजा है

सब दुख भूल गये समझ लिया पी कर
इसी सोच ने हमें बार बार ठगा है

खेतियाँ मौत की लूट गयीं बारिशें
उर का विशाल वन अब उजाड़ सा है

लोग मुँह उतार कर घेरे हैं मुझे
क्यों न हँसूँ आज समय हँसने का है

अभी ये शरीर समन्दर में है बन्द
अभी तो सूर्य से बाक़ी मिलना है

सुस्त इच्छाएँ आँगन में आ सो गयीं
घर में निश भर चाँद रोता रहा है

वह मेरी गली की डगर जान लेगा
मैंने भी अभी उसे कहाँ देखा है



वह सब कुछ उस के भीतर है
समझ से उस की जो बाहर है

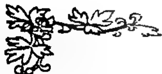
वह सूरज है कि फिर चन्द्रमा
उस के लिये कहाँ अन्तर है

घर बैठे ही दुनिया घूमे
उस की यात्रा अति सुन्दर है

छोड़ दिया चुनाव ही जिसने
अब विष या अमृत सागर है

बहुत प्रसन्न था जन्म पे उस के
आयु पर्यन्त रोता पर है

कहाँ जाओगे उधर जाओ
यहाँ भी तो कोई नगर है



एक ही रात के देवालय
हो गये सारे मंत्रालय

जिस दिन से छूआ अम्बर
ठिगना ठिगना लगे हिमालय

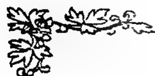
फिर आकार कहाँ से मिलता
दे कर गया मुझे अन्धालय

अब घबराना मौत से कैसा
है मौत भी तो विश्रामालय

अगर कहीं हो वही दिखा दे
स्व-संचालित इक विद्यालय

तिमिर युक्त है 'मित्र' ये दुनिया
खोल भी दे अपना अरुणालय





[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]





मौत से अपने जनम का सवाल, पूछते रहो
ज़िन्दगी का अब क्या है ख़याल, पूछते रहो

वृद्ध होते ही हो गये निढाल, पूछते रहो
बच्चे क्या क्या करते हैं धमाल, पूछते रहो

आत्मा में हरिक की है भुचाल, पूछते रहो
कौन किस को अब करेगा निहाल, पूछते रहो

आ रही बारिश छोड़ कर अकाल, पूछते रहो
ये कैसा ध्रुव जैसा अन्तराल, पूछते रहो

सर्पों ने रख दी केंचुली निकाल, पूछते रहो
क्या ज़हर भी हो जायेगा विशाल, पूछते रहो





आकाश में फड़फड़ाती उड़ान, सोचते रहो
आदमी की बढ़ती हुई थकान, सोचते रहो

परबतों में नदियों का रुझान, सोचते रहो
ज़िन्दगी में श्वासों की ढलान, सोचते रहो

इक विज्ञापन पढ़ा हम ने तारों से लिखा हुआ
गगन को भी चाहिये इक मकान, सोचते रहो

देख लेना एक भी घर न मिलेगा भरा हुआ
खोखले हैं जंगलों में मचान, सोचते रहो

समन्दर में करते रहे यात्रा जीवन भर हम
ढूँढ़ लेना फिर हमारे निशान, सोचते रहो

चाल चल कर देख लो अपनी जीत हार की
दुश्मनी मेरी आप का ईमान, सोचते-रहो

देखना इक दिन चलेगी बयार 'भानुमित्र' की
हर शब्द का है अलग ही विधान, सोचते रहो





दिगम्बर में जलते हुए अलाव, देखते रहो
और धरती पे उभरे हैं जो घाव, देखते रहो

इक ओर तो है लावे का उठाव, देखते रहो
और ऊपर से गगन का दबाव, देखते रहो

हो गया जब महाभारत भी एक इंच के लिये
हाथ भर का हमारा ये दुराव, देखते रहो

मस्तिष्क की महामारी से उजड़ गयीं बस्तियाँ
घूमते खाली घरों में बिलाव, देखते रहो

गर्म हो कर कब तक उड़ा कोई आस्मान में
परबतों में बादलों का जमाव, देखते रहो

इक समस्या थी हमारी कैसे हम जियें यहाँ
दुनिया भर के आये हैं सुझाव, देखते रहो

जानते हो ! वो पुरानी हवाएँ कौन ले गया
समन्दर में भी है लहर का अभाव, देखते रहो

लोग सारे क्या करें चुप रहने के सिवा यहाँ
पाँखियों से आदमी का लगाव, देखते रहो

